मोहन राकेश के साहित्य में समसामयिक चेतना

पी० एच० डी० शोध – प्रबंध

1997

बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय, झाँसी

निर्देशक :
डा० एन० डी० समाधिया
डी० लिट्
प्राचार्य,
गाँधी स्नातकोत्तर महाविद्यालय, उरई (उ० प्र०)

शोधार्थी :
अनिल कुमार समाधिया
66, गनेश मढ़िया
झाँसी
उ० प्र०
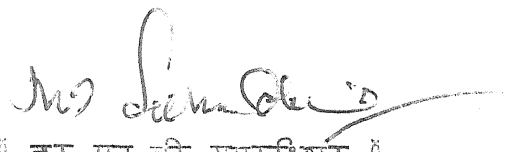
:: प्रमाण पत्र ::

मुझे यह प्रमाणित करते हुए प्रसन्नता है कि श्री अनिल कुमार समाधिया ने मौलिक विषय " मोहन राकेश के साहित्य में " समसामयिक युगीन चेतना " पर विश्वविद्यालय नियमानुसार मेरे निर्देशन में 200 दिनों से अधिक उपस्थित होकर शोध प्रबंध पूर्ण कर लिया है ।

प्रस्तुत शोध प्रबंध विषय विशेषज्ञों को परीक्षार्थ संस्तुति करता हूँ । शोध प्रबंध सर्वथा मौलिक एवं गवेषणापरक है । हिन्दी साहित्य में प्रस्तुत शोध प्रबंध की अभिनव प्रशस्त अवधारणा से अनुसंधित्सुयों को शोध के नये आयामों की प्रेरणा प्राप्त होगी ।

§ डा॰ एन॰ डी॰ समाधिया §

:: भूमिका ::

मोहन राकेश बहुमुखी प्रतिभा के धनी लेखक हैं, उन्होंने समसामयिक चेतना को समकालीन परिवेश के साथ आधुनिकता के परिप्रेक्ष्य में परिवर्तित किया है । लेखक के बुनियादी सोच और संवेदना को आधुनिकतावादी परिवेश में यथार्थ के रूप से चित्रित किया है । वस्तुतः कथकार मानवीय मूल्यों का संप्रेषण यथार्थ समाज में रूपायित करता है, इसी प्रेरणा से प्रेरित होकर प्रस्तुत शोध प्रबंध में पांच शोध अध्यायों को निरूपित किया गया है ।

मोहन राकेश के रचना संसार का संक्षिप्त परिचय प्रथम अध्याय में दिया गया है । लेखक के समग्र रचना साहित्य को कहानी साहित्य, उपन्यास साहित्य और नाटक तथा एकांकी साहित्य में विभाजित किया गया है , उनके तीन कथा संग्रह, तीन उपन्यास, चार संपूर्ण नाटक एवं एकांकी, बीज तथा पार्श्व नाटक हिन्दी साहित्य के लिये अन्यतम देन है । इसी क्रम में लेखक के समसामयिक चेतना के विविध आयाम द्वितीय अध्याय में अनुशीलित किये गये हैं । संवेदनशील साहित्यकार होने के नाते लेखक समसामयिक युग परिवेश से अत्यधिक प्रभावित है, फलतः समसामयिक चेतना को प्रस्तुत अध्याय में विभिन्न स्तरों पर समझाया गया है । मानव मूल्य तर्क और व्यक्ति

चेतना, वर्ग चेतना व यांत्रिकता, आधुनिक संवेदना व समकालीन संवेदना, आधुनिकता व परंपरा जैसे संदर्भों को इसी अध्याय में शोध परक व्याख्या देने का उपक्रम है ।

प्रबंध का तृतीय अध्याय लेखक के कहानी साहित्य में समसामयिक युगीन चेतना को प्रदर्शित करता है, जिसमें आधुनिक परिवेश और मूल्यहीनता की स्थिति, पारिवारिक व सामाजिक मूल्यों में बदलाव, संबंध हीनता व संबंधों के नये आयाम यथार्थ के प्रति बदला हुआ दृष्टिकोण साहित्य कथ्य में नये मूल्यों संप्रेषण तथा साहित्य शिल्प में नये मूल्यों का संप्रेषण जैसे महत्त्वपूर्ण बिन्दुओं को क्रमशः तृतीय, चतुर्थ एवं पंचम अध्यायों में व्याख्यायित किया गया है । यद्यपि चतुर्थ अध्याय और पंचम अध्याय क्रमशः लेखक के उपन्यास साहित्य तथा नाट्य-साहित्य पर आधृत हैं फिर भी उपर्युक्त महत्त्वपूर्ण बिन्दुओं को वर्णित साहित्यिक विधाओं में संश्लेषित किया गया है ।

साहित्यगत कथ्य और शिल्प मोहन राकेश के साहित्य में प्रतिबद्धता तथा अलगाववादी तर्कों में व्यंजित है इसी कारण लेखक के कथ्य और शिल्प दो ध्रुवान्त आज भी मौलिक संचेतना को निरूपित करते हैं, उन्होंने कथ्य के माध्यम से राजनीतिक, सांस्कृतिक तथा सामाजिक समस्याओं को उभारा है तथा शिल्प के धरातल पर उन समस्याओं को स्थापित करके नई अर्थवत्ता प्रदान की है । उन्होंने नवोन्मिष साहित्यिक स्तर पर कथ्य और शिल्प की सृष्टि की है

ऐसा प्रतीत होता है कि लेखक ने युवबोध को उभारकर युगधर्म स्तर पर कथ्य और शिल्पका अभिनव मार्ग प्रशस्त किया है, जो सर्वथा मौलिक है ।

षष्ठ अध्याय में उपसंहार शीर्षक के अन्तर्गत मोहन राकेश के समग्र साहित्य में निरूपित, प्रतिपादित, उनकी उपलब्धि तथा महत्व का समाकलन है। वस्तुतः लेखक तत्कालीन समसामयिक चेतना का प्रतिनिधित्व करता हुआ नये प्रतिमानों के साथ युगान्तर विश्लेषण यथार्थ धरातल पर करता चलता है, परिणामस्वरूप मोहन राकेश का समग्र साहित्य समसामयिक चेतना का यथार्थवादी स्वरूप व्यंजित होता है । मानव जीवन की विसंगतियों तथा आंतरिक प्रतिक्रियाओं का संतुलित चित्रण समसामयिक चेतना के परिपार्श्व में स्पष्टतः द्रष्टव्य है । शोध कार्य की मूल प्रेरणा मुझे बुन्देली साहित्य के सुप्रसिद्ध लेख क स्वर्गीय डा॰ गनेशीलाल बुधौलिया, राठ (हमीरपुर) से प्राप्त हुयी थी जिसे पूर्णता की ओर पहुंचाने का श्रेय अग्रज डा॰ एन॰ डी॰ समाधिया को है । " समसामयिक चेतना " जैसे तार्किक विषय को लिपिबद्ध कर सका हूं यह डा॰ समाधिया के कुशल निर्देशन का ही प्रतिफल है । डा0 समाधिया के पारिवारिक सदस्यों का योगदान भी कम महत्वपूर्ण नहीं है । गुरु-पत्नि के स्नेह एवं आशिर्वाद से मैं अभिभूत हूं, मेरा सौभाग्य है कि मुझे उनकी श्रद्धा की पात्रता प्राप्त हुयी ।

पूज्य मां श्रीमती सावित्री देवी समाधिया एवं पिता श्री गौरीशंकर समाधिया के प्रोत्साहन एवं सहयोग के बिना मेरा लक्ष्य तक पहुंच पाना संभव नहीं था, मैं उनके इस सहयोग से जीवन पर्यन्त उऋण नहीं हो सकूंगा ।

डा० कमलेश शर्मा, अनुभाग अधिकारी, बुन्देलखण्ड विश्व-विद्यालय, झाँसी का मैं विशेष आभारी हूँ जिनका सहयोग एवं मार्गदर्शन शोध कार्य के प्रारंभ से अंत तक समय-समय पर मेरा उत्साहवर्धन करता रहा । श्री राजेन्द्र अग्निहोत्री, सांसद, झाँसी की धर्मपत्नि श्रीमती सरोज अग्निहोत्री जोकि मेरी माँ तुल्य हैं का आशीष मुझे इस शोध हेतु सदैव प्रेरित करता रहा । मैं अपने भाइयों, बहनों, मित्रों एवं परिचितों के सौजन्य का भी मैं आभारी हूँ, जिन्हें मैं इस समय स्मरण कर धन्यवाद व्यक्त करता हूँ ।

मैं उन सभी पुस्तकालयों, साहित्यकारों के प्रति कृतज्ञ हूँ जिनके साहित्य ने इस शोध प्रबंध को सरल बनाया है ।

(अनिल कुमार समाधिया)

:: रूपरेखा ::

विषय प्रवेश :

1- मोहन राकेश के साहित्य का संक्षिप्त परिचय-

(क) कहानी साहित्य-

1- इन्सान के खण्डहर सन् 1950 ,

2- नये बादल सन् 1957 ,

3- जानवर और जानवर सन् 1958 ,

4- एक और जिन्दगी सन् 1961,

5- फौलाद का आकाश सन् 1966,

6- आज के साये सन् 1967,

7- रुये रेशे सन् 1968,

8- एक दुनिया सन् 1968,

9- चेहरे और अन्य कहानियां सन् 1972,

(ख) उपन्यास साहित्य-

1- अँधेरे बन्द कमरे सन् 1961,

2- न आने वाला कल सन् 1968,

3- अन्तराल सन् 1972,

(ग) नाटक और एकांकी साहित्य-

1- आषाढ़ का एक दिन सन् 1958,
2- लहरों के राजहंस सन् 1966,
3- आधे अधूरे सन् 1969,
4- अण्डे के छिलके अन्य एकांकी तथा बीज नाटक (मरणोपरान्त सन् 1973 में प्रकाशित)

2- समसामयिक चेतना के विविध आयाम-

(क) मानव मूल्य :- मानवीय समस्याओं के सन्दर्भ में
(ख) तर्क और व्यक्ति चेतना का सूत्रपात
(ग) वर्ग चेतना और यांन्त्रिकता
(घ) आधुनिक संवेदना और समकालीन संवेदना
(ङ) आधुनिकता और परम्परा
(च) युगीन समस्यायें

3- मोहन राकेश के कहानी साहित्य में समसामयिक चेतना-

(क) आधुनिक परिवेश और मूल्य हीनता की स्थिति
(ख) पारिवारिक और सामाजिक मूल्यों में बदलाव
(ग) सम्बन्ध हीनता तथा सम्बन्धों के नये आयाम
(घ) यथार्थ के प्रति बदला हुआ दृष्टिकोण
(ङ.) साहित्य कथ्य में नये मूल्यों को संप्रेषण
(च) साहित्य शिल्प में नये मूल्यों का संप्रेषण

:: 0 ::

प्रथम अध्याय

विषय-प्रवेश

:: विषय – प्रवेश ::

:

मोहन राकेश के साहित्य का संक्षिप्त परिचय –

:

क– कहानी साहित्य –

कहानी जैसी अभिनव विधा का विश्लेषण परिचयात्मक दृष्टि से करना एक जटिल प्रक्रिया है । रचनात्मक जीवन्तता और वैचारिक भावभूमि की क्रमागत परम्परा को हिन्दी कहानी-साहित्य ने क्रमिक रूपों में संजोया और संवारा है । परम्परानुमोदित प्रतिबद्धता का चिन्ह कहानी के उत्तरोत्तर विकास में ह्लासता को प्राप्त करता चला है । भाव-गाम्भीर्य की दृष्टि से इस दिशा में मुंशी प्रेमचंद ने यथार्थवादी पहल की , उसी पहल को मनोवैज्ञानिक विश्लेषण प्रक्रिया से जैनेन्द्र कुमार एवं इलाचंद्र जोशी ने भाव-संवेदन के तादात्मीकरण के रूप में उभारा है तथा तदनुरूप ही कहानी-साहित्य में यशपाल और मोहन राकेश ने जीवन के ठोस धरातल की बुनियादी भूमिका रूपायित की । जिस परम्परा और पृष्ठभूमि से राकेश का कहानी-साहित्य से साहचर्य स्थापित हुआ , उस परम्परा में क्षिप्रता तथा त्वरित वेग-संवहन की क्षमता विद्यमान थी । सामाजिक परिस्थितियों के परिपार्श्व में आज के जीवन को परखने और आँकने का उनका यह उपक्रम अभिनव ही था । विचारों की विस्तीर्णता तथा पूर्वाग्रह की संकीर्णता के ज्वलंत प्रश्न को उनकी कला में मुख्य स्थान मिला । उनका कहानी लेखन , नई पुरानी अलग-अलग स्थितियों और संबंधों में यथासंभव जुड़ने का प्रयास करता है । कृति का प्रतिपाद्य कृतिकार की मनःस्थिति का – दीप्तिमय दर्पण होता है । इस वस्तुस्थिति से राकेश यथार्थ के प्रश्नों तथा सामाजिकता के प्रति प्रतिश्रुत होकर लेखन प्रक्रिया को दृढ़ बनाते रहे ।

समाज यथार्थ और जीवन का आधुनिकता के परिपाश्र्व में एक अभिव्यंजित रूप है, जिसमें भारतीय जीवन के व्यंग्यबोध, संवेदनशीलता में रेखांकित हो सके हैं । तात्कालिक रूप में भाव-बोध के, नये आयाम जितने आकर्षक और महत्वपूर्ण लगते हैं, रचना-विधान में उतने ही जीवन्त बनते हैं । राकेश ने इस अंतर्निहित शक्ति को प्रयोग-धार्मिता के विविध कहानियों के माध्यम से निरूपित किया है, जिनका विकास-क्रम कहानी संग्रहों के नाम से उल्लिखित है ।

1- इन्सान के खण्डहर (सन् 1950 : -

मोहन राकेश द्वारा प्रणीत कथा-साहित्य में इन्सान के खण्डहर-संकलन को प्रकाशन की दृष्टि से प्रथम माना जाता है, जिसका प्रकाशन सन् 1950 में प्रथम कहानी संकलन के रूप में हुआ । इसमें प्रकाशित कहानियों का क्रम है -

1- इन्सान के खण्डहर, 2- धुँधलादीप, 3- मरुस्थल, 4- उर्मिल जीवन
5- एक आलोचना, 6- लक्ष्यहीन, 7- सीमाएँ 8- कम्बल
9- दोराहा, 10- वासना की छाया में, 11- मिट्टी के रंग

इन संग्रहित कहानियों की संख्या ग्यारह है । राकेश का लेखन-क्रम यथार्थवादी भावभूमि को कुरेदता हुआ प्रेमचंद की परम्परा का अति-यथार्थवादी दृष्टि से परिपालन करता है । प्रेमचंदोत्तर तथा साहित्य के बहुमुखी आयाम सामाजिक, राजनीतिक, मनोवैज्ञानिक आदि के धरातल पर उद्घाटित हुए हैं, लेकिन राकेश की स्थिति इन सबके विपरीत होकर युगबोध के आग्रह की ओर अग्रसर हुई है । डा० धनंजय ने लिखा है -

" वे दृष्टिकोण से मुक्त होने की कोशिश में लगे रहे हैं । उनमें अपनी पूरी वस्तु के साथ सहयोग के स्तर पर एकात्मता पात्र और घटनाओं का तटस्थ पर्यवेक्षक नहीं है । " (1)

1- सारिका, मार्च 1983, पृष्ठ संख्या: 82

" इंन्सान के खण्डहर " की कहानियों में राकेश की दृष्टि अभिजात्यवर्ग की कुण्ठा-ग्रसित आत्मा तथा मध्यम वर्ग की घुटी हुई चेतना की ओर अधिक केंद्रित रही है, वे मुंशी प्रेमचंद की भांति शोषितों, पीड़ितों और श्रमिकों के प्रति अधिकसदय और यथार्थ दिखाई देते हैं । धर्म के नाम पर उद्भावित आडम्बर तथा पाखंडता का उन्होंने व्यंगात्मक एवं आवेशी-स्वर में पर्दाफाश किया है ।

प्रस्तुत कथा-संग्रह प्रगतिशील बनाम पराजयवादी मनोवृत्ति का प्रतीक है । धर्माडंबर के प्रति व्यंग्य का जोश और धनिक वर्ग की लिप्सा के लिए उबलता हुआ आक्रोश, निरीहता के पेट में पहुंची आग की तपन तथा ऊपरी सतह पर तैरती हुई अस्त-व्यस्तता का उन्होंने जोरदार शब्दों में प्रति-विरोध किया है । इस कहानी-संग्रह में परिस्थिति के साथ त्वरित-गति से नया रूप लेते हुए जीवन की धड़कनों को लिपिबद्ध करने का, प्रयास किया गया है। यद्यपि लेखक की मानसिकता समय के बदलाव के साथ परिवर्तित होती रही, मोहन राकेश ने स्वयं इस प्रथम कहानी संग्रह को प्रयोगों के साथ अधूरा ही माना। उनका मत है -

> " कई दृष्टियों से मेरे बाद भी प्रयोगों के साथ ये एक कली के रूप में ठीक से जुड़ नहीं पाती । उनके शिल्प और कथ्य दोनों में एक तरह की कोशिश है, एक अनिश्चित तलाश का कच्चापन " (1)

लेखक की बदलती हुई मानसिकता के साथ पाठक का दृष्टिकोण बदलना आवश्यक नहीं है । रचनाधर्मिता के हर पड़ाव पर कुछेक पाठकों का संबंध विच्छिन्न हो जाता है और कुछेक का विस्थापित । मोहन राकेश जीवन भर एक ही मानसिक भूमि पर रहकर एक जैसा ही लिखना शब्दों का व्यवसाय मानते हैं । उनकी पूरी रचना-यात्रा में विविध प्रयोग दिशाएं खुलकर सामने आई हैं । जीवन की प्रणयन भूमि एक खुली किताब है ।

1- मेरी प्रिय कहानियां : पृष्ठ संख्या: 9, 10

समय के झकोरों से पृष्ठों के बदलाव को देखा जा सकता है तथा उन पर अंकित वर्णमाला के चिन्हों को बखूबी पढ़ा जा सकता है । सृष्टि की सतत् परिवर्तन-शीलता इस ध्येय की पूर्ति करती है ।

लेखक जिस समय सृजन की प्रक्रिया से गुजरता है, उस समय-सापेक्षता का सन्निकट प्रभाव उस पर रहता ही है । रचना के प्रभाव से मुक्त होकर समय के परिवर्तन के साथ लेखक नई रचना से आत्मीयता स्थापित कर लेता है । राकेश कृत उपयुक्त ग्यारह कहानियों में वैविध्य तथा बदली सृष्टियों की बहु-आयामी रूपरेखा निर्धारित है ।

2- नए बादल (सन् 1957) सन् 1957 में प्रकाशित मोहन राकेश का "नए बादल" दूसरा कहानी संग्रह है । इसमें कुल तेरह कहानियों को संग्रहित किया गया है, जिनका नामोल्लेख विवरण इस प्रकार है -

1- नए बादल, 2- मलवे का मालिक, 3- अपरिचित, 4- शिकार 5- एक पंखयुक्त ट्रैजेडी, 6- उसकी रोटी, 7- मन्दी, 8- हवामुर्ग 9- उलझते धागे, 10- सौदा, 11- फटा हुआ जूता, 12- भूख, 13- छोटी सी चीज ।

मोहन राकेश का प्रथम कहानी संग्रह 1950 तथा द्वितीय कहानी-संग्रह सन् 1957 में प्रकाशित हुआ जो सात वर्ष के अंतराल को आलोच्य विषय बनाता है । राकेश के जीवन के ये सात वर्ष बहुत ही उथल-पुथल के थे । राकेश के जीवन में अनिश्चितता, संकटग्रस्तता की अदम्य गहराईयाँ उन्हें व्यक्तित्व विहीन करने में जुटी हुई थी । इन सबका संकेत उनके प्रस्तुत कहानी संग्रह की कहानियों में मिलता है । " नए बादल " और " उसकी-रोटी " जैसी कहानियों में जिंदगी का कटु-यथार्थ जीवन्त होकर मुखर हुआ है ।

राकेश की कृतियां स्वयं ही इस संग्रह की वास्तविकता को व्यक्त करती हैं -

" इन्सान के खण्डहर से इस दौर तक आते-आते ओढ़ी हुई बौद्धिकता के कोने काफी झड़ गये थे, जुमलेबाजी से इतनी चिढ़ हो गई थी कि अपने जुमलेबाज दोस्त से बारह साल पुरानी दोस्ती लगभग टूटने को हो गई थी । यद्यपि व्यक्तिगत जीवन भी बहुत से तनावों के बीच जिया जा रहा था, फिर भी अपने परिवेश से कटे होने की अनुभूति का स्थान सर्वथा एक दूसरी अनुभूति में लिया था और वह थी जुड़ होने की अनिवार्यता की अनुभूति, पर वह कड़ुवाहट निरर्थक और आरोपित नहीं थी । उसका उद्देश्य भी जुड़े होने की स्थिति से मुक्ति पाना नहीं, उसकी तात्कालिक शर्तों को स्वीकार करते हुए जुड़े रहने के सार्थक संबंधों को खोजना था"। ﴾1﴿

मोहन राकेश की मानसिकता कहानियों में प्रतिबद्धता तथा अलगाव की स्थिति, एक द्वंद्व की भूमिका निर्वाहित करती रही है । जिस समय वे पारिवारिक अंतर्द्वंद्वों के सोपान पर आरूढ़ थे, उसी समय बेकारी की अवस्था में प्रस्तुत कहानियों का सृजन हुआ है । वस्तुतः इस संग्रह की कहानियां लेखक के मन में प्रतिबिम्बन करते हुए तटस्थ भाव की मुक्ति की अपेक्षा करती हैं ।

" नए बादल"कहानी संग्रह में कुछ कहानियां, मुंशी प्रेमचंद की कहानियों सी सफल कही जा सकती हैं, जैसे " मलबे का मालिक " और " मन्दी " इन कहानियों में यथार्थोन्मुखी आदर्शवाद और सामाजिक व्याप्ति की परिचर्या है । सामाजिक संदर्भों में लिखी गई ये कहानियां यद्यपि जीवन की तीखी-प्रतिक्रियाएं व्यक्त करती हैं, तथापि इन कहानियों का मनोविज्ञान आलोच्य-दशा का सूक्ष्म दृष्टि तत्व अन्वेषित करते हुए चलता है, जिसका स्वरूप - फटा हुआ जूता, "भूखे" और छोटी सी चीज में उत्कृष्ट रूप से दृष्टिगत होता है।

- -

1- मेरी प्रिय कहानियां - पृष्ठ संख्या: 9-10

डा० धनंजय वर्मा का यह मत लेखकीय दृष्टिकोण को ही पुष्ट करता हुआ दिखाई देता है –

" नए बादल कहानी–संग्रह के माध्यम से सहज अनुभूति के साथ कई स्थितिशील और गतिशील व्यक्तिगत और सामाजिक स्तरों पर यथार्थ की खोज उसके सामाजिक और भौतिक परिपार्श्व और अंतत: एक व्यक्ति के चरित्र के माध्यम से पूरे समाज और युग की कथा–व्यथा कहना ही आलोच्य कहानियों की दिशा है ।" ॥1॥

लेखक जीवन सत्य को आंशिक रूप में ग्रहण कर कथानक की गहराई में नई भावभूमि खोदता है । आज का जीवन तो इतना विशाल, बहुमुखी, दुरूह एवं जटिल है, जिसे मोहन राकेश ने समग्रता के साथ देखने का प्रयास किया है । उनके द्वारा प्रस्तुत कहानियों में जीवन के जटिल से जटिलतर पर्त उघाड़े गए हैं। व्यक्तिगत जीवनानुभव, वर्ण्य–विषय को गहराई में पहचानने में सहायक होकर कंपाप्राण बन उठा है । प्रस्तुत कथा–संकलन में बहुधर्मी दृष्टियां संयोजित हैं । कहानी रचना–यात्रा के उन मूल्यों को राकेश ने प्रस्तुत कहानियों में समाहार किया है जिनमें स्वानुभूति पूर्णत्व को प्राप्त कर सकी है ।

3– <u>जानवर और जानवर –</u>

सन् 1958 में " जानवर और जानवर " कहानी संग्रह का प्रकाशन हुआ । इस संग्रह की कहानियों में जीवन का यथावत–रूप चित्रित किया है । सामाजिक यथार्थ की बुनियादी भूमिका इन कहानियों में अपनायी गई । " नए–बादल " कथा संग्रह की भाँति इस कथा–संग्रह में भी जीवन के विखण्डित अर्थहीन कथ्यों को गतिशीलता प्रदान की गई है । यह मोहन राकेश का तीसरा कहानी–संग्रह है ।

– –

1– सारिका : मार्च 1993 पृष्ठ संख्या: 82

इसमें प्रमुख आठ कहानियों का संकलन है । वे हैं -

1- काला रोजगार, 2- परमात्मा का कुत्ता, 3- मवाली, 4- आर्द्रा
5- आखिरी सामान, 6- मिस्टर भाटिया, 7- क्लेम ,
8- जानवर और जानवर ।

इन कहानियों के मूलभूत संदर्भ कहानीकार की तत्कालीन मनःस्थिति और परिवेश के प्रतिरूप को उजागर करता है । रचना-विधान की दृष्टि से निस्सन्देह उनकी अपनी सीमाएँ हैं । जीवन को उसकी समग्रता के साथ समेट लेने की क्षमता इन कहानियों में केंद्रित हो गई हैं । जीवन के बिन्दु पर जब कहानीकार कथ्य को गढ़ता है तो गहराई के साथ उसका परिमापन भी कर लेता है । राकेश की सूझबूझ, आंतरिक प्रतिक्रियाओं का एक संतुलित चरण लिए हुए है । विगत शताब्दी के अनुभूत-सत्य को गहराई से देखने, जीवन के प्रति अपनी निष्ठा व्यक्त करने के प्रति भी सतत् प्रयत्नशील हैं । साथ ही मनो-वैज्ञानिक, सामाजिक, नैतिक, आर्थिक आदि मूल समस्याओं को लेकर उन्होंने कहानियों को नई-अभिव्यंजना दी है ।

मानव जीवन के वर्तमान संक्रमण-काल में कथाकार का उत्तरदायित्व और भी अधिक बढ़ जाता है । मोहन राकेश ने इस प्रकार की दायित्वपूर्ण मानसिकता का लेखन प्रक्रिया में सदैव निर्वाह किया है । उनका कथन है -

" नए बादल " और " जानवर और जानवर " की अधिकांश कहानियाँ इसी मानसिकता की उपज हैं जिन स्थितियों को लेकर असंतोष था उनकी विसंगतियों की प्रतिभा में एक हिम्मत का भाव भी था।" (1)

आलोच्य संग्रह का मूल-स्वर आर्थिक परिस्थितियों का सामना करने वाले निम्न-मध्य-वर्ग की मजबूरियों, यातना, विवशता और आत्मवेदना को सहते भोगते व्यक्ति की जिजीविषा से युक्त है । ये पूरी तरह सामाजिक परिप्रेक्ष्य में लिखी गई कहानियां है ।

1- मेरी प्रिय कहानियां : पृष्ठ संख्या: 10

" आखिरी सामान " जैसी कहानियों में जीवन की विडम्बनाओं का गहनता तथा सूक्ष्मता के साथ विवेचन किया गया है । मानव, मानव का प्रत्यय खोकर असंगतियों के झमेले में तत्संबंधित घुटन को कटु-यथार्थ के साथ झेल रहा है । इस कहानी में वैयक्तिकता की अंतिम सीमा को झकझोरा गया है । " परमात्मा-का कुत्ता " कहानी में आदमी के कुत्ते और परमात्मा के कुत्ते का विरोध उभारते हुए मोहन राकेश ने सरकारी व्यवस्था के खोखलेपन, निष्क्रियता, रिश्वत-खोरी और अन्याय से ग्रस्त परिवेश को तोड़ने के लिए बैचेन, संतप्त, विवश और उपेक्षित-व्यक्ति का चित्रण यथार्थ-शैली में किया है । उपर्युक्त दो वर्णित कहानियां, संग्रह की प्रथम कहानियां हैं, जिनकी प्रभाव-सृष्टि यत्र-तत्र देखने को मिलती है । कहानी " आर्द्रा " में दो अलग-अलग रह रहे पुत्रों के बीच वात्सल्य में मां की पीड़ा प्रतिबिम्बित हुई है । मां दोनों के बीच विभाजित होकर जीती है । यही उसकी पीड़ा और दारुण-यंत्रणा का कारण है ।

मोहन राकेश ने जिस सशक्त परम्परा का सूत्रपात किया था , उसका निर्वाह परिवर्तित परिस्थितियों में युगीन भाव-बोध के साथ किया । परिस्थितियों को नजदीक से पहचान कर सृजनात्मक शक्ति से भोगे हुए यथार्थ में बदल डाला और रचना को जीती-जागती तस्वीर के रूप में प्रस्तुत कर दिया । प्रस्तुत कथा-संग्रह में उनकी जैसी सोद्देश्यता, जीवन्तता, सामाजिक दायित्व के निर्वाह के प्रति दुराग्रह तथा प्रगतिशील दृष्टिकोण के साथ यथार्थता का स्वाभाविक - चित्रण परिवेशात्मक बन पड़े हैं ।

सिद्धांत-वादिता के खोखलेपन से वे पूर्णतया मुक्त हो गए फिर भी सीमित परिवेश की सीमाओं के आबद्ध-घुटन की आकुलता उनकी मनःस्थिति में सदैव बनी रही जिसका परिलक्षित-स्वरूप प्रस्तुत कथा-संग्रह है ।

इस कथा-संग्रह के विषय में यही कहा जा सकता है कि कथाकार परिवेश के प्रति पूर्णतः सजग है ।

आर्थिक विषमता ने किस सीमा तक निम्न-मध्य-वर्ग को तोड़ दिया है तथा टूटकर मनुष्य किस प्रकार जीवन की विडम्बनाओं व यातना-मूलक असंगतियों को विवश-भाव से सहता हुआ जीने की ललक लिए हुए है । इस तनावपूर्ण परिवेश का प्रतिबिम्बन मोहन राकेश की कहानियों में भलिभांति हुआ ।

4- <u>एक और जिंदगी</u> - (सन् 1961)

चतुर्थ कथा-संकलन " एक और जिंदगी " के नाम से सन् 1961 में प्रकाशित हुआ । इस संकलन में नौ कहानियां संग्रहित हैं इनके नाम हैं -

1- " सुहागिनें ", 2- " आदमी और दीवार ", 3- " हक-हलाल "
4- "गुनाह-बेलज्जत", 5- " जीनियस ", 6- " बस स्टेंड की एक रात,
7- " मिस पाल ", 8- " बारिश ", और " एक और जिंदगी "।

मोहन राकेश, निजी जीवन के अंधेरे थपेड़ो में जिजीविषा के अन्वेषण में स्वयं को विन्यस्त बनाए हुए थे । वैवाहिक बंधन का विच्छृंखलन और नौकरी से मुक्ति पा जाने से ही उनके जीवन स्वच्छंदवादिता का एक घनघोर दौरा शुरू हो गया था । जीवन एकाकी हो गया था । मानवीय रिश्ते बेमानी सिद्ध हो चुके थे और अवशिष्ट लगातार अकेलेपन का बोध तथा - कुण्ठाग्रस्त-बोध भावना । यही कारण है कि " एक और जिंदगी " कहानी संग्रह की शुरूआत नए-नए आयामों को उद्घाटित करने में सफलीभूत हुई है । सामाजिक संघर्ष तथा व्यक्ति और समाज की परस्पर विरोधी यातनाएं इस कथा-संग्रह की प्रमुख इकाइयां बनी है । जहां " इन्सान के खंडहर " प्रथम संकलन में सांकेतिकता थी वहां दूसरी ओर " एक और जिंदगी " के प्रारंभ में विस्तीर्णता ने सांकेतिकता की पूरकता को संजोजित कर लिया । राकेश ने समाज के बीच होने वाले एकाकीपन पर गौर करते हुए उसकी परिणति को व्याख्या दी है ।

डा० सुरेश सिन्हा ने लिखा है -

" राकेश की कहानियों में सामाजिक संदर्भों की जीवन्तता का उल्लेखनीय-विवरण " सुहागिनें " और "एक और जिंदगी " कहानियों में मिलता है । " ‹1›

यह अकेलापन समाज से कटे हुए व्यक्ति का अकेलापन नहीं है बल्कि समाज के बीच रहकर होने वाला एकाकीपन , दुरूहता और जटिलता के साथ स्थापित होता है, जिसका पर्याय प्रस्तुत कथा-संग्रह के प्रारंभ से ही मिलता है ।

वस्तुत: वैयक्तिक यथार्थ का परिवेश इन कहानियों में सामाजिक यथार्थ के अपेक्षाकृत अधिक उभरा है । " सुहागिनें " और " एक और जिंदगी " में जो यथार्थ है वह भोगा हुआ यथार्थ ही है । राकेश की यह विशेषता रही है कि उन्होंने जो अनुभूत किया, सहा, भोगा उसे निस्संगता के साथ कथाओं में स्वर दिया । साधारणत: वैयक्तिक संबंधों की पीठिका पर निजी अनुभूत को परिवेशात्मक बना देना एक कुशल-कथाकार का कार्य है । मोहन राकेश ने कथा की रचना-यात्रा में ऐसे प्रकाश-स्तंभ प्रदान किए हैं, जिनका अति-यथार्थवादी आलोक भले ही भीषणता की लू-लपट को चिनगारी प्रदान करे लेकिन उससे रचनाधर्मिता का मार्ग प्रशस्त जरूर हुआ है । समय और समाज की प्रतिध्वनियों में प्रस्तुत कथा-संग्रह यथार्थ-चेतना की अभिव्यक्त करता है । इस संदर्भ में संग्रह की " मिस पाल, " सुहागिने " आदि कहानियां महत्वपूर्ण हैं । इनमें एक अनुभूत-पीड़ा है । अव्यक्त-यातना तथा निरंतर अकेलेपन को सहते जाने का बोझ है । कलाकार, कला-निहित कथ्य को अंतर्मन की प्रक्रिया के स्वरूप के ढांचे में परिणति देकर संज्ञा का बदलाव कर दिया करता है । " मिस पाल " तथा " सुहागिनें " कहानियां दाम्पत्य जीवन की विघटनपूर्ण कथा-व्यथा है । नारी और पुरूष के निर्भरता चाहते - व्यक्तित्वों की विवशता का सूक्ष्म-अंकन जहां " सुहागिनें " में किया गया है, वहां " मिस पाल " में एक भद्दी और मोटी स्त्री की संवेदनशीलता तथा विडम्बनाओं का यथार्थ चित्रण है ।

- -

1- नई कहानी की मूल संवेदना - पृष्ठ संख्या: 101

कथाकार जहाँ एक ओर भोगे हुए क्षणों को कथा में बोधगम्य बनाता है तो दूसरी ओर परानुभूति के व्यथित-हृदय की पहचान भी उसमें बनाये रखता है । इस दृष्टि से "हक हलाल" एक ऐसी कहानी है, जिसमें निम्नवर्गीय परिवारों में रहने वाली नारी पर नित्यप्रति होने वाले अत्याचारों का वर्णन किया गया है । प्रस्तुत-कथा में अपने परिवेश से दुःखी एवं हताश नारी की टूटी हुई और बिखरी हुई जीवन दशा स्थापित हुई है ।

5- फौलाद का आकाश- ॥सन् 1966॥

"एक और जिंदगी" के बाद सन् 1966 में नौ कहानियों का संग्रह "फौलाद का आकाश" नामक कहानी-संग्रह प्रकाशित हुआ है । अब तक की कहानियों से हटकर जिन नई प्रयोगशील कहानियों को इस संग्रह में स्थान मिला उसमें-

1- गिलास टैंक, 2- पाँचवे माले का फ्लेट, 3- सेफ्टीपिन
4- सोया हुआ शहर, 5- फौलाद का आकाश, 6- जखम,
7- जंगला, 8- चौगान और 9- एक ठहरा हुआ चाकू का नाम आता है । इन कहानियों में स्वयं राकेश मोहन ने लिखा है -

" फौलाद का आकाश " संग्रह की दो तीन कहानियों को छोड़कर प्रायः सभी में आबादी वाले बड़े शहरों की जिंदगी उसकी भायमहता को चित्रित किया गया है हालांकि भयावहता के संकेत इन कहानियों में व्यक्ति के माध्यम से ही सामने आते हैं फिर भी उनका केन्द्र-बिन्दु व्यक्ति न होकर उसके चारों ओर का संत्रास है । " ॥1॥

महानगरीय आधुनिकता के आयाम, वैचारिक एवं कलात्मक अवधारणाओं में प्रस्तुत कहानी-संग्रह में दृष्टिगत होते हैं । आज के जीवन की महानगरीय जटिलता को आत्मसात कर पाना कठिन है ।

- - - - - - - - - -

1- मेरी कहानियां, पृष्ठ संख्या: 12

उसमें कुण्ठा, घुटन, रोमांस आदि के प्रति आसक्ति है । व्यापक दृष्टि से देखने पर पता लगता है कि मोहन राकेश ने भूख और यौन-वर्जनाओं की परिधियों को भौतिक आविष्टन में उद्धृत किया है । फलस्वरूप कथाकार टुकड़े-टुकड़े हुए जीवन-दर्पण को जोड़ने का उपक्रम करता है लेकिन गतिरोध का प्रश्न व्यक्तित्व की हर इकाई में प्रतिबिम्बित होकर उठाया जा सकता है । इस समूचे कहानी संग्रह में सूक्ष्म शहरी यथार्थ-बोध है, जिसे महानगरीय परम्परा का नवीनतम संस्करण कहा जा सकता है । विवश होकर मोहन राकेश ने महानगरीय जीवन-सत्य को स्वीकार करते हुए अतियथार्थवादी नग्नता को चित्रित कर ही दिया है, जिसमें असंतोष और विक्षोभ उत्पन्न होना भी स्वाभाविक है । कथाकार की वैचारिक विशेषता अस्तित्ववादी होकर - परिस्थितियों से मोर्चा लेने के लिए कटिबद्ध है । " जख्म " और " एक ठहरा हुआ चाकू " कहानियों में जो भूमि है, वह निश्चित कथानक तथा परिस्थितियों में संदर्भों का अलगाव-सा है । फिर भी संबंधित प्रसंगों में उनकी सार्थकता है जिस पर डा० धनंजय वर्मा की यह उक्ति समाचीन है -

> " यहां अनुभव प्रधान हो उठा है उससे संबंधित कुछ उत्तप्त-क्षण उन पर व्याप्त किसी मनःस्थिति की वर्तुलकार गति और वे सूक्ष्मतर-सूत्र जो व्यापक-परिदृश्य से जुड़कर उस क्षण और परिस्थिति को सार्थक बनाते हैं । " (2)

प्रस्तुत कहानी-संग्रह की अधिकांश कहानियों में भावात्मक संबंधों की ऊब हैं, रिश्तों से मुक्त होने के लिए की गई बेमानी संघर्ष-योजना है, जीवन में निरंतर भरती जा रही जड़ता है, ठंडे और बेजान मानवीय-संबंध, अपरिचय का बोध, आत्मनिर्वासन की स्थितियां हैं, दाम्पत्य-संबंधों में घुटन है । आतंकित एवं असुरक्षित भयावहता है । मानवीय संबंधों के इन चिंतन-सूत्रों पर सहजता से राकेश ने विचार किया है ।

1- सारिका - मार्च 1973, पृष्ठ संख्या: 82

" गिलास टैंक:" और " फौलाद का आकाश " कहानियों में निरूपित यथार्थ जीवन से असंबद्ध और आरोपित प्रतीत होता है । कथकारउपेन्द्रनाथ "अश्क"ने संभवत : इसी कारण लिखा है -

" नए के चक्कर में राकेश ने कुछ प्रयोग किये हैं उनका संग्रह " फौलाद का आकाश " पढ़ता हूं तो लगता है कि न किए होते तो अच्छा होता " गिलास टैंक " बहुत अच्छी बनते बनते रह गई है । राकेश ने उसमें बड़ी ही सूक्ष्मता से एक पारिवारिक ट्रेजेडी को उजागर किया है लेकिन " गिलास टैंक " का प्रतीक आरोपित लगता है । यदि " गिलास टैंक " के संबंध मेंकहीगई सभी बातें कहानी से काट दी जाएं यानि कहानीके पहले चार पृष्ठ, चौथे पृष्ठ की केवल चार अंतिम पंक्तियों को छोड़कर, काट दिए जाएं तो प्रभाव में कुछ भी फर्क नहीं पड़ेगा, बेहतर भले ही बन जाए । " (1)

6- <u>आज के साये</u> - (सन् 1967)

सन् 1967 में एक कहानी-संग्रह का प्रकाशन हुआ । मोहन राकेश द्वारा समय-समय पर प्रस्तुत-संग्रह की कहानियों को प्रकाशन में ले लिया गया है । सन् 1950 से 1966 तक की वे कहानियां इसमें सम्मिलित की गई है, जिनका भारतीय जीवन के सामाजिक साम्प्रदायिक और राजनीतिक पक्षों पर तीखा-व्यंग्य है । व्यंग-बोध की स्थिति में रकेश ने व्यक्ति की टूटन एवं जुड़न को भी अभिव्यक्ति दी है । संवेदनशीलता और अभिव्यक्तिगत-तीक्ष्णता के द्वारा इन कहानियों में विविध-मानसिक स्थितियों, मनोभावों, और संदर्भों को रेखांकित करने वाली शैली में प्रस्तुत किया गया है । राकेश की प्रस्तुत कहानियां परिवेश के यथार्थ को व्यक्त करने वाली गंभीर-चिंतनपूर्ण शैली में लिखित मानवीय संबंधों की कहानियां हैं यद्यपि इन कहानियों की पुनरावृत्ति, घात-प्रतिघात संघातों से सुविधा की दृष्टि से नए संकलन में संयोजित हो गई है।

1- हिन्दी कहानी का एक अंतरंग परिचय- पृष्ठ संख्या:252

परिस्थितियों के वैषम्य का चित्रण एवं अनुभूति की अनिवार्यता का निरूपण इन कहानियों के संग्रह के प्रकाशन के साथ उजागर हो उठा था । बदलते मानव-मूल्यों के साथ विवेचित कहानियों का नवीन संस्करण " आज के साये " संग्रह में फिर से अंतर्भूत हो उठा । गहराई से देखें तो प्रतीत होता है कि राकेश ने परिवेश के प्रति एकत्व की भूमिका में निर्वाहन-गति प्राप्त की है । एक जैसा विचार-विधान ही कहानी-संग्रह के अभिनव-मौलिकता का दावा करने में प्रस्तुत संग्रह के माध्यम से सिद्ध है ।

7- <u>रोंए रेशे</u> - (सन् 1968)

" आज के साये " संकलन के एक वर्ष पश्चात " रोएं-रेशे शीर्षक में कहानियों का संग्रहित नवीनीकरण हुआ । इस संग्रह के शीर्षक के अनुकूल ही इसमें सूक्ष्म-मानवीय संबंधों का यथार्थ चित्रण हुआ है । प्रायः सभी कहानियों में परस्पर संघर्षरत और लड़ते-झगड़ते व्यक्ति का चित्रण किया गया है। प्रस्तुत कथा-संग्रह फौलाद का आकाश " संग्रह का पर्याय है । इस में आर्द्रा ", " गिलास टैंक ", " अपरिचित ", " उसकी रोटी " आदि कहानियाँ अवतरित की गई है । नई-पुरानी कहानियों का संयोजन, नए शीर्षक से नए भावबोध को उजागर करने में सक्षम रहा है ।

मोहन राकेश ने सिद्ध कर दिया है कि यथार्थ को खोजने की आवश्यकता नहीं है, अपितु आवश्यकता उसे पहचानने की है, उसे वास्तविकता में मंडित करने की है । उन्होंने प्रस्तुत संग्रह की कुछ-एक कहानियों में नई-संवेदना की खुलकर प्रशंसा की है । उनका अपने सृजन में मौलिक होना और ईमानदार होना इस बात का संकेत हैं कि वे अपने आप में कथ्यगत एवं शिल्पगत संगतियों की पहचान रखते हैं । उनके नए कहानी संग्रह में निरंतर विकसित और परिवर्तित अर्थ-बोध इसी एकत्व के साथ परिलक्षित होते हैं ।

घटनाओं और पात्रों की अवतारणा किसी वैचारिक विशेषता की एक-सूत्रता में अभिनव-संस्करण के साथ जुड़ गई है । कथाकार का टूटा व्यक्तित्व जटिलताओं की अभिव्यक्ति लेकर प्रस्तुत कथा-संग्रह की नई कहानियों में व्यंजित हुआ है । मानवीय संबंधों , अस्तित्व के संकटापन्न स्थिति का विवरण प्रकाश में लाना कहानीकार का उद्देश्य रहा है । सूक्ष्म-मनोवैज्ञानिकता जीवन-दृष्टि में कितनी सहायक हो सकती है । इस धनात्मक संकेत को राकेश ने पात्रों के शैथिल्य और दौर्बल्य मन के भीतर टटोला है । साथ ही जीर्ण-शीर्ण-आस्था और विश्वासों के प्रति विद्रोह प्रकट करते हुए लेखक ने हर नई-कहानी में नया जीने का ढंग प्रस्तुत किया है । प्रकारान्तर से पीड़ित-मानवता के प्रति सहानुभूति प्रकट करते हुए कहानीकार ने विषमताओं में उरेहा है । उन्होंने मानव-मन को पहले की अपेक्षा अधिक गहराई के साथ नापकर उसे कथ्यगत नवीन रूप प्रदान किया है । इस प्रकार विषय-बोध की दृष्टि से प्रस्तुत कहानी-संग्रह, चयन और टेक्नीक दोनों दृष्टियों से स्वस्थ परम्परा का द्योतक है ।

8- <u>एक-एक दुनिया</u> - (1968)

मोहन राकेश ने अलग-अलग स्थितियों और संदर्भों की कहानियों को अलग-अलग संग्रहों में फिर से विभाजित कर उप-निर्दिष्ट संग्रहों की पुर्नव्याख्या की है । सन् 1968 में " रोएं-रेशे के साथ ही प्रस्तुत कहानी-संग्रह का प्रकाशन हुआ, जिसमें नई कहानियों का भी अविर्भाव मूल्ययुक्त-दिशा लिए हुए है । इनमें अपने या दूसरे के जीवन-संदर्भों को देखने की अतिरिक्त ललक है । राकेश का विश्वास रहा है कि जीवन के किसी भी हिस्से या टुकड़े को किसी भी संदर्भ में कथ्य के साथ अवतरित किया जा सकता है । इसी विश्वास पर उन्होंने प्रस्तुत कथा-संग्रह की नवीन कहानियों में क्षण-बोधीय परिवेशात्मक प्रश्रय को ग्रहण किया । कहानी परिवेश का प्रतिबिम्ब है और साधारण आदमी नित्य प्रति कोई न कोई कहानी जीता है , उसे भोगता है, पचाता है ।

अतः जीकर या पचाई हुई कहानी को हर अभिनव कहानी में उतारा जा सकता है। प्रस्तुत कहानी-संग्रह में युग-मानव की संवेदनाओं को वहन करने की शक्ति है ।कथ्य का अपना पर्यावरण है । शिल्प का अपना परिधान है । समय-सापेक्षता के साथ सामाजिक यथार्थता की सापेक्षता मोहन राकेश की कहानियों के प्राण है ।

मानवीय मूल्यों का खंडन-मंडन आज भौतिकतावादी परिपार्श्व में भ - भांति संरक्षित होने लगा है । मानसिक कुरूपताओं का दिग्दर्शन आज के मनुष्य के विकृत मस्तिष्क की गहराई को संस्पर्शी करता हुआ दृष्टिगत होने लगा है । आधुनिक बुद्धिजीवी अपने को संतुलित धरातल परस्थिर रख सकने में और भी अधिक असमर्थ पाता है । इन गतिशील दृष्टियों के परिप्रेक्ष्य में मोहन राकेश ने पात्र-चरित्र निरू-पित किए हैं । उनका कथानक अनुभूतियों के तल को स्पर्श करता हुआ स्वतः ही स्फुरित हो गया है । वैचारिक सक्रियता का संमजन पात्रों की मानसिक भूख बनकर निर्वहमान है । रचनात्मक जीवन्तता का आरूढ़ प्रश्न प्रस्तुत कथा-संग्रह में विशेष रूप से नई कहानियों के मध्य रचनात्मक दिशा की ओर इंगित करता हुआ सफलीभूत है ।

9- मिले-जुले चेहरे - (सन् 1972)

इस कहानी-संग्रह में प्रायः वे ही कहानियां है जो प्रथम पांच संग्रहों में प्रकाशित हो चुकी है । नई-पुरानी दोनों प्रकार की कहानियों मिलकर संदर्भित कथ्य को भले ही एक बनाती हो किन्तु क्रमागत लेखन में नए-पुराने का सामंजस्य भिन्न-भिन्न भाव-भूमियों से प्रयुक्त है, जिससे राकेश की सृजनशीलता के लम्बे दौर का परिचय प्राप्त होता है । राकेश ने जीवन की विविध - आधुनिक परिस्थितियों और परिवेश सें संबंधित व्यक्ति को समस्त सामाजिक अंतर्विरोधों सहित देखा-परखा है । प्रस्तुत संग्रह में स्त्रैण भावना प्रमुख है । नारी के प्रति लेखक की गहरी सहानुभूति है, जो भोगे हुए जीवन के वैषम्य का

सचित्र-विरोध है । बदलते हुए पारिवारिक और सामाजिक परिवेश में, नारी के प्रति बदलते हुए मूल्यों को, उन्होंने भलिभांति रेखांकित किया है । प्रणय और परिणय, एक-दूसरे के प्रति आकर्षण के धरातल पर उत्पन्न रागभाव, मनः-स्थितियों को इन नई कहानियों में विलक्षणता के साथ रूपायित किया गया है । नारी-पुरुष के बदलते स्वरों में नवीन अभिव्यंजना है। इसमें नारी मनोविज्ञान के अछूते तथा अनोद्घाटित संदर्भों को प्रस्तुति मिली है । डा० सुरेश सिन्हा ने इन्हीं मूलभूत आधारों पर यौन-संदर्भों की कहानियों को अलग कर विभाजन की रेखा द्वारा अभिनव-अंकन किया है ।

जीवन संतप्त एवं यातना-ग्रस्त है जिनसे राकेश कृत इन नई कहानियों को जटिल तथा पेचीदा-कथ्य मिला है । समकालीन परिस्थितियों में जूझते-पिसते मनुष्य की कहानियां सामाजिक जीवन के यथार्थ का प्रतिबिम्ब बन सकी है । व्यक्ति-व्यक्ति पर अकेलेपन की बोधगम्य प्रतिरूपकता छाई हुई है । परिवेशात्मक घुटन में निरुपित जिंदगी ऊब, उदासी, नीरस तथा पीड़ा-युक्त बन पड़ी है । इस प्रकार के मूल-संवेदना-जनक औचित्य-पूर्ण को इन कहानियों में अभिव्यंजना देने का कार्य कथाकार ने भलिभांति किया है । ये कहानियां, सामाजिक जीवन के यथार्थ की प्रतिबोधक-कहानियां है।

निष्कर्ष :--

मोहन राकेश ने कहानी-यात्रा में निरंतर विकसित और परिवर्तित होते जा रहे भारतीय जीवन की झलक है । उनकी समग्र कथा-यात्रा को मुख्यतः प्रथम पांच उल्लिखित संग्रहो में वर्गीकृत किया जा सकता है । यह एक विचित्र संयोग है कि पहले उनके पांच कहानी संग्रह, चार संग्रहों में परिवर्तित हुए और बाद में केवल तीन जिल्दें ही रह गई । संप्रति राकेश की कहानियों के तीन संग्रह ही हमारे सामने हैं -

---

1- नई कहानी की मूल संवेदना - पृष्ठ संख्याः 100

1- क्वार्टर, 2- पहचान, और 3- वारिस ।

क्वार्टर में पन्द्रह , "पहचान" में उन्नीस और "वारिस"में बीस कहानियां संकलित हैं । इस प्रकार कुल चौवन कहानियां इन संग्रहों में संकलित हैं ।

मोहन राकेश ने इन तीनों संगहों की भूमिका में लिखा है -

" चारों जिल्दों के अलग-अलग समय पर प्रकाशित होने के कारण, बाद की जिल्दें आने तक पहले की जिल्दों के संस्करण लगभग समाप्त हो गए । जिससे उन्हें एक सेट के रूप में प्रस्तुत करने का उद्देश्य पूरा नहीं हुआ मुझे प्रसन्नता है कि पूरी कहानियों को एक साथ तीन जिल्दों में प्रकाशित करने की वर्तमान-योजना से इस जिज्ञासा का समाधान हो जाएगा"। (1)

उपर्युक्त कहानी-संग्रहों के आधार पर संपूर्ण कहानी रचना-यात्रा का मानचित्र प्रस्तुत हो जाता है , जिससे पृथक-पृथक कथा-संग्रहों की आवृत्ति और उनमें निहित कहानियों की दृष्टि को समकालीन करने की गुंजाइश नहीं रही । जहाँ तक राकेश की कथा-यात्रा को स्पष्ट करने वाली कृतियों का प्रश्न है, उन्हें हम प्रथम पांच संग्रहों से जान सकते हैं । पांच संग्रहों की कहानियों को चार और तीन कहानी संग्रहों में बांधने का प्रयास लेखक की प्रयोग-धर्मिता है ।

राकेश की साहित्य-साधना के चरणों में नवान्मेष, युग संदर्भ के बदलते रूप संगृहित-कहानियों के संदर्भ में भी अपना कलेवर तथा शीर्षक बदलते रहे हैं, फलस्वरूप उन्होने अपने कथा-साहित्य को नवयुग की संस्कृति सभ्यता तथा चेतना के यथार्थ को प्रस्तुत करने को मेरी प्रिय कहानियां " कथा-संकलन को जिज्ञासु प्रमाता-वर्ग के सामने प्रस्तुत किया । यद्यपि इन कहानियों की पुनरावृत्ति पूर्वापर संग्रहों के संदर्भ में हुई है । लेखक ने अपनी अभिप्सित कहानियों को प्रस्तुत संगह में स्थापित किया है ।

- -

1- " पहचान " की भूमिका - पृष्ठ संख्या: 5

: : :

(ख) उपन्यास-साहित्य-

समाजवादी यथार्थ की पहचान रखने वाले उपन्यासकार मोहन राकेश ने क्रांति और नए समाज के निर्माण की बात सुनियोजित ढंग से अपने उपन्यासों में की है ।

उपन्यास-कला क्रमबद्धता के स्वरूप से हटकर ऐसे यथार्थवादी लेखकों द्वारा प्रतिक्रियात्मक बन गई है । जाने-अनजाने मन की मूल-प्रवृत्तियों का समर्थन राकेश के उपन्यासों में अवतरित हो ही गया है । मध्य-वर्गीय अभिव्यक्ति के स्तर पर निश्चय ही ऐसे उपन्यासों की प्रवहमान-धारा क्रांतिदर्शिता के वात्याचक्र में अविर्भूत हुई है, जो व्यक्तिगत और सामाजिक संबंधों को व्याख्यायित करने की क्षमता से परिपूर्ण है । मनुष्य की जटिलतम संवेदनाएं आज के आधुनिकतावादी उपन्यास में विश्लेषित है । यही कारण है कि उपन्यासों में राजनीतिक परिदृश्य को भी आज के परिवेश में मूल्यांकित किया गया है । राजनीतिक ढांचे में अपनाई हुई दुराग्रहपूर्ण बातों को नवजागरण काल में आकर उन्हें साहित्यकार ने ही नया कलेवर प्रदान किया है । सामाजिक असंगतियों, राजनीतिक दुर्विनीतिता तथा सांस्कृतिक मोहभंगता को उजागर करना , उन उपन्यासों को अपना अभीष्ट है ।

समकालीन संवेदना तथा जीवन निष्ठा के आंदोलन स्वरूप को राकेश के उपन्यासों का ढांचा बनना पड़ा । यद्यपि सामाजिक चेतना का अभी हमारे समाज में उतना विकास नहीं हुआ है कि लोग तथ्यों की गहराई पहचानें उसे विश्वास की दृष्टि से देखें, फिर भी मोहन राकेश के उपन्यासों में ऐसे मूल-तत्त्व सन्निहित हो गये हैं, जिनके कारण पाठक-वर्ग को आकृष्ट होना ही पड़ता है । राकेश ने देश और काल में व्याप्त अपने उपन्यासों को जिन मानव-मूल्यों से आपूरित किया है, उनका निर्वाह भी सफलता के साथ हुआ । पात्रों तथा घटनाओं के संयोजन की अपूर्व-क्षमता लेखक में रही ।

उपन्यासों में सामाजिक, राजनीतिक परिवर्तन की स्थितियों के साथ व्यापक जन-चेतन को भलिभांति अंकित किया गया है, जिनका परिचयात्मक-परिशीलन अधोलिखित है -

1- <u>अंधेरे बंद कमरे</u> - (सन् 1961)

प्रस्तुत उपन्यास का प्रकाशन सन् 1961 (साठोत्तरपरिपाश्र्व) में हुआ । यह उपन्यास विकसित होते नगर बोधजन्य-विसंगतियों, तनाव और कुण्ठा की अभिव्यक्ति है तथा आधुनिकता-बोध से उत्पन्न अकेलेपन और स्वकेन्द्रित-महत्वा-कांक्षाओं के पीछे दौड़ती मानसिकता की दास्तान है । मानवीय संबंधों के खोखले तथा निरर्थक हो जाने के कारण दाम्पत्य-जीवन के यापन की अभिव्यंजना इस उपन्यास में की गई है । दाम्पत्य-सूत्र निर्माणकारी न रहकर इस उपन्यास के कथापटल पर विनाशकारी सिद्ध हुए हैं । मध्यम-वर्ग में युवा वर्ग की तुष्टि को सर्वोपरि निर्धारित करते हुए रचनात्मकता की उपेक्षा प्रस्तुत उपन्यास में बताई गई है । युवावर्ग की अहम् मध्यवर्गीय दाम्पत्य-जीवन की समगति को भंग करने में तल्लीन हैं । यद्यपि अहम्वादी लक्षणों से कुछ-एक मनुष्य रचनात्मक कार्य भी करते हैं पर ऐसे लोगों की संख्या कम है । वैवाहिक स्वच्छंदता के बावजूद पति-पत्नियों में रुचियों, विचारों की दृष्टि से असमानता है । परिणाम-स्वरूप असंतुलित और उच्छृंखल व्यक्तियों के दर्शन इस उपन्यास में बहुधा होते हैं ।

> " अंधेरे बंद कमरे " के पात्र अपने-अपने त्रास और अपनी विवशता से घिरे परस्पर टकराने और फिर भी उसी दौड़ में शामिल होने के शाप से ग्रस्त हैं । इनका एक दूसरे और अपने परिवेश से कट जाना अजातीयता लिए है । " (1)

प्रस्तुत समीक्षा उक्ति में मोहन राकेश इंद्रनाथ मदान ने पात्रों के माध्यम से संबंध की भावबोधीय अभिव्यक्ति की है ।

उपन्यास के परस्पर संगत स्वरूप में चेतना का सौंदर्य नवीनता को ओढ़ता चलता है । तथा आत्मसंभावनाओं के घेरे में " स्व " को " पर " में निर्देशित करता है । यह प्रभाव प्रतीकात्मक पद्धति से आधुनिक जीवन-पद्धति नई होने के कारण बदलते महानगर के संदर्भ में अपरिचय लिये हुए हैं, फिर भी यह आधुनिकता समग्र-चेतना को क्षिप्रता से प्रभावित करती है । प्रकृति के स्वरूप में भी आज के जीवन की उलझन उपन्यासकार देखने ये चूकता नहीं है । इस अस्पष्टता का प्रतीक उपन्यास के कथ्य में निहित व्यक्ति तल का कोहरा है । " अंधेरे बंद कमरे "के मुख्य पात्र हरबंस की मानसिक अस्पष्टता विषादपूर्ण मनोवृत्ति तथा उलझन का प्रतीक है । उपन्यासकार का कथन है -

> " कुहरे के अन्दर तस्वीरें बने देखना मानसिकता के विषय में मधुसूदन की कल्पनाओं को प्रतीकायित करता है ।" ﴾1﴿

उपन्यासकार ने मध्यवर्गीय जीवन के खोखलेपन को पाठक के समक्ष खोलकर रख दिया है । उपन्यास-निहित पात्रों का ध्यान जीवन- जगत की समस्याओं से हटकर वैयक्तिक परिधि में इस तरह आवर्त हो गया है, जिसे वे होटलों, क्लबों में, बहसों में चर्चा का विषय बनाते हैं । इस उपन्यास का ध्येय पति-पत्नी के पारिवारिक संबंध को यथार्थवादी भूमिका पर रूपायित करना है । पत्नी की पति के लिये क्या उपयोगिता हो सकती है पत्नी के द्वारा पदोन्नति, बड़े लाभ प्राप्त करना सेक्रेटरी का पद प्राप्त करना, महानगर की पत्नी की पति के लिए उपादेयता का ही दूसरा नाम है । पति भीड़ में चौराहे पर खड़ा अपने को बौना पाता है तथा अपने भोलेपन पर झुंझलाता भी है । प्रस्तुत उपन्यास में इन अनुभवों को नैतिक मूल्यों की श्रृंखला के साथ विवेचित किया गया है। आधुनिकता-बोध में व्यक्ति अपने परिवेश के अनुकूल ही वस्तुओं की आवश्यक्ता का अनुभव करता है ।

1- " अंधेरे बंद कमरे " - पृष्ठ संख्या: 83

यह मध्य-वर्गीय प्राणी है, जो मशीन में लोहे के पुर्जे की भांति करते हुए तथा अपने को खुरचा जाने के बाद भी सर्वहारा के संघर्ष को नैतिक समर्थन नहीं दे पाता। आधुनिकता-बोध आत्मतोष या पूर्णावधि को स्वीकार करने की प्रक्रिया नहीं है । आज का व्यक्ति सजग और सचेत होते हुए भी जिंदगी से टूटा हुआ है । इसीलिए वह जीवन भर संगति का अन्वेषण करता है । इस उपन्यास में ऐसे संगति के टुकड़े मिले हैं, जिनमें या तो टूटन है या फिर बंग खाया हुआ विदूषण है । डा0सुरेश सिन्हा ने जीवन के खण्डित तथा तटस्थ रूप को स्वीकार करते हुए " अंधेरे बंद कमरे " उपन्यास के पात्रों की मानसिकता पर विचार किया है । उनका विचार है -

> " वह जीवन के खण्डित-रूप स्वीकार तो नहीं करता परन्तु तटस्थ भी नहीं हो पाता इसीलिए वह लगातार भटकता तथा छटपटाता है । " (1)

आज का सामाजिक ढाँचा ही बदले प्रतिमानों का स्वरूप है, जिसमें मध्य-वर्गीय पति-पत्नी के मध्य तनाव की स्थिति होना आवश्यक है । यह उपन्यास पति-पत्नी के मध्य सह-अस्तित्व और स्वतंत्र व्यक्तित्व की समस्या से जुड़ा है । दाम्पत्य-जीवन के कक्ष में पति-पत्नी की चेतना परिपार्श्व के अनेक अनुभवों को संजोए रखती है । बदलती अनुभूतियों का परिप्रेक्ष्य महात्वाकांक्षाओं को परिवर्तित कर देता है, जिनके कारण जीवन में द्वंद्व और संघर्षों का अविर्भाव स्वाभाविक बन जाता है । जीवन मूल्यों की वृत्ति कभी-कभार घनात्मक भी सिद्ध हो जीती है । इस उपन्यास में एक स्फूर्ति-पूर्ण सजीव चित्र-योजना देखिए-

> " सुबह उठने पर वर्षा से धुली धूप का दृश्य, आँगन में क्वाक-क्वाक कुड़कुड़ाती, पंख फड़फड़ाती खूबसूरत बत्तखें । " (2)

1- हिन्दी उपन्यास - पृष्ठ संख्या : 353
2- अँधेरे बंद कमरे - पृष्ठ संख्या: 325

नवजीवन के प्रतीक के रूप में चित्रित की गई है । साथ ही विरोध भरी भावनाओं को खुलकर व्यक्त हो जाने पर लहराती हवा के थपेड़ों के खिड़की दरवाजों से टकराने के रूप में विस्फोट के परिणामों की चिंता भी वातावरण को दूषित कर देती है । इन वैषम्यतापूर्ण रूपकों को प्रस्तुत उपन्यास में द्वंद्वात्मक तरीके से सहजता के साथ संयोजित किया गया है ।

2- न आने वाला कल - (सन् 1968)

प्रगति चेतना के तत्वों की दृष्टि से सन् 1968 में " न आने वाला कल" उपन्यास आत्माभिव्यक्ति का एक नया आयाम बनकर हिन्दी जगत में अवतरित हुआ । इस उपन्यास में प्रत्यक्षतया सामाजिक वास्तविकता तथा साहित्य के अखण्ड-संबंध की स्वीकृति तथा रूढ़िवाद का विरोध और शोषक समाज का विरोध और शोषितों का समर्थन और वैयक्तिक चेतना के परिपार्श्व में निहित उद्भावित-स्वरूप आदि की अभिव्यक्ति सप्रमाण है । व्यक्तित्व की झलक का वैषम्यपूर्ण-चित्रण अतिवादी मान्यताओं के झमेले में ग्रस्त हुआ जान पड़ता है । लेखक ने व्यक्तित्व के विकास में बाधक नौकरी और पत्नी का खंडन-पक्ष प्रस्तुत किया है । उपन्यास के सर्वोपरि पृष्ठ-भाग पर इस समस्या का उल्लेख सूक्ति बनकर प्रस्तुत हुआ है -

" उसकी समस्या इतनी थी कि
वह छुटकारा पाना चाहता था
परन्तु किससे'
नौकरी से'
पत्नी से'
या किसी और चीज से
जिसे कि
वह स्वयं भी
नहीं जानता था' (1)

---

1 न आने वाला कल- सर्वोपरि पृष्ठ भागांकित

: :

इस तत्व के प्रयोग से लेखक ने कटु सत्यों को भी इन्हीं की परिधि में उपस्थित किया है । अपरिचित रूप से कलात्मक यथार्थ का निर्वाह व्यक्ति की मनःस्थिति के घेरे में ही हुआ है । सामाजिक यथार्थ का उद्घाटन प्रगतिशील पात्रों द्वारा उनके प्रतिकार में निहित है । नैराश्यपूर्ण मानव-मन की झांकी, विद्रोही स्वर में उदीप्त हो उठी है । विचारों का खोखलापन विरोध की अभिव्यक्ति से परिपूर्ण हो गया है । एकताबद्ध संघर्ष के टुकड़े-टुकड़े करके - उपन्यासकार ने अव्यवस्था के चिर-सूत्रों को झकझोर दिया है । मध्य-वर्गीय समस्याओं का विस्तारण तथा संकोचन उभरते हुए परिवेश को लेकर ही किया गया है । इस उपन्यास में युग-धर्म के निर्वाह के साथ-साथ मानव-प्रगति और मानव-मुक्ति का भौतिक आविष्टन में ही वर्णन है ।

विवेच्य उपन्यास में समस्याओं के विविध-स्वरूप निराकरण की टोह में खड़े हैं । उपन्यासकार की दृष्टि, पूर्व परिचित समस्याओं के पिष्टपेषण की उदासीनता से पाठकों को बचाकर, एक नया परिप्रेक्ष्य प्रदान करना चाहती है । वैचारिक मतान्तर तथा वैवाहिक आरोपण समस्या का केन्द्र-बिन्दु बनकर असंख्य विचार-श्रेणियों को अपने में समाहित किए हुए हैं । उपन्यास के एक विशिष्ट-स्थल पर पात्रों की मनःस्थितियों को अनावृत करने वाली मनोवैज्ञानिकता का परिचय देता हुआ उपन्यासकार कहता है -

> " अपनी ही इच्छा और जिम्मेदारी से हम लोगो ने
> अपने लिए परिस्थिति खड़ी कर ली थी जिससे उबरने
> का उपाय दोनों को ही नहीं आता था ।" ‖1‖

उपन्यास निहित शोभा पात्र में इस प्रश्न को मानक मान लिया गया था तथा विरोधी-परिस्थितियों में लिए गए अपने निर्णय का मान रखने के लिए अंर्तद्वंद्व का कारण बना था ।

- -

1- " न आने वाला कल " - पृष्ठ संख्या: 21

वैवाहिक विसंगतियों की कटुताओं के घूंट पी-पीकर आज नारी-चेतना के तत्त्व विकसति हो रहे हैं । रूढ़ियों की प्रतिवृत्ति के विरुद्ध प्रगति का विद्रोह करके, सुधारवाद का अंश हर-व्यक्तित्व में विध्वनित हो रहा था । पुरुष वर्ग की आशंकाएँ कटघरे की दीवारें बनकर विद्रोही-स्वर को जहां उगलने लगती है, वहाँ नारी भी संस्कृति के रट्टू तोते से परांगमुख होकर, स्वच्छंदता के साथ सोचने विचारने पर मजबूर होती है । वैवाहिक धारणा का विरोध तथा नवीन विचार का समन्वय एक भयावनी-समस्या लेकर प्रस्तुत हुआ है, जिसने अनास्थावादी होने के साथ-साथ कुण्ठा ग्राही बना लिया है । प्रकृति की दो इकाइयों के सामूहिक रूप से सामाजिक स्वीकृति के विरोध में स्वच्छंदतावाद का नया-नशा नर-नारी के मानव-पटल पर आज पूर्णतया अंकित हो गया है । मस्तिष्क को असंतुलित करने तथा स्वर के अहम् की पूरकता बनने के बीच, हर मस्तिष्क में जो बौद्धिकता के वैभव का दावा करता है, अंकुरित होने लगा है ।

" न आने वाला कल " उपन्यास स्वच्छंदतावादी ऐसी भयावहता का प्रतीक है, जिसमें जीविकोपार्जन के साधन पर भी प्रहार किया जाता है । आज का व्यक्ति अनुशासन और मर्यादाओं की परिधि की जकड़ से भाग निकलने के लिए आतुर है । इस गाम्भीर्य विवेच्य-विषय को उपन्यासकार ने बखूबी इस उपन्यास में बोधगम्य बनाया है -

> " त्याग-पत्र देने का निश्चय मैंने अचानक ही किया था ।
> उसी तरह जैसे एक दिन अचानक शादी करने का निश्चय
> कर लिया था । " ‹1›

प्रस्तुत-पंक्ति में यकायक किए गए कार्य की परिणति पर त्वरित - प्रक्रिया का अनूठा-उद्धरण है ।

1- " न आने वाला कल - पृष्ठ संख्या: 5

प्रश्न चिन्हों से बुनी हुई जिंदगी जीवन की मोर्चाबंदी को सही ढंग से प्रस्तुत होने में बाधक बनती है । वर्तमान को जीने की ललक, अनास्थावादी बनकर अतीत के विश्वास को निष्क्रिय करती हुई समूचे-परिवेश को बदलने में जुट जाती है । मनो-वितृष्णा और झुझलाहट को संजोए हुए तांत्रिक जीवन की विसंगठित-रूप अस्तित्व की खोज में भटक रहा है , जिसका उपर्युक्त उपन्यास में विचारात्मक धरातल पर निर्वाह किया गया है ।

3- <u>अन्तराल</u> - ॥ सन् 1972 ॥

" न आने वाला कल " के पांच वर्ष पश्चात मोहन राकेश ने हिन्दी उपन्यास-जगत को " अन्तराल " नामक तृतीय उपन्यास कृति दी । इसमें स्त्री-पुरुष के संबंधों का निरूपण सहज-शिल्प में किया गया है । " अंतराल " में मोहन राकेश ने संबध-हीनता एवं मूल्य-हीनता की युगीन-संवेदना का नया-बोध प्रस्तुत किया है । इसमें निराश एवं थके कदमों की आहट स्पष्ट रूप से पहचानी जा सकती है । उपन्यास के मूल-पात्र कुमार और श्यामा शारीरिक और - मानसिक आधार परस्पर-पूरक होने की वास्तविकता से परिचित होते हुए और नामहीन-संबंधों से जुड़े रहकर भी एक साथ नहीं रह पाते पृथक-पृथक हो जाते हैं। दोनों की कहानी एक ओर जहां शारीरिक आंकांक्षाओं की है, वहीं दूसरी ओर आंतरिक उद्वेगों के रूप में उपस्थित है । इन कहानियों के संदर्भ-सूत्र यथार्थ एवं स्वप्न के रूप में संजोए गए हैं।

" अंतराल " में मोहन राकेश ने अस्तित्व को नकारने के आधुनिक-बोध की स्थिति को स्पष्ट किया है । असुविधापूर्ण मनःस्थिति में कुमार ने अपने अस्तित्व के एक निश्चित काल के लिए स्थगन को स्पष्ट रूप से पहचान लिया है ।

> " उसका वहां रहना जैसे रहना न होकर, कहीं और जाकर रहने का अन्तराल भर था, किसी दूसरी भूमिका में जीने से पहले का विराम् ।

1- " अन्तराल " - पृष्ठ संख्या: 33

: 37 :

अपने ही परिवार, समुदाय अथवा समाज के लिए मनुष्य का बेगाना हो जाने की पीड़ा अत्यन्त असहनीय है लेकिन मनुष्य जब अपने को अपने आप के लिए ही भुला दे, तब स्थिति-जन्य पीड़ा निस्सन्देह अकल्पनीय है ।

छोटी-छोटी सी बात के प्रति संवेदनशील आधुनिक व्यक्ति कभी-कभी बड़ी-से-बड़ी घटना को भी नकार जाता है । आधुनिक संवेदना से पीड़ित उद्वेगमय स्थिति में मनुष्य दाम्पत्य-जीवन पर कुठाराघात करता है । इसी पक्ष को लेखक ने श्यामा के जीवन से परिभाषित करके अनोखा प्रस्तुतीकरण किया है -

" श्यामा के जीवन में अन्तराल का रूप कुछ विशेष मनःस्थिति से जुड़ा हुआ है । उसके मन में यह अंतर्द्वंद्व इस प्रकार से है, " एक बार कोर्ट में हस्ताक्षर किए थे, उसी तरह फिर दूसरी बार भी किए जा सकते हैं । " ॥1॥

उक्त शब्द तलाक की स्थिति को ध्वनित करते हैं । पति की उदासीनता श्यामा में अंतहीन-झुंझलाहट भर देती है । " अंतराल " में प्रत्येक स्थान पर अंतराल है चाहे वह भौतिक संबंधों का अंतराल हो या पारिवारिक-आत्मीय-संबंधों का उपन्यास में गत्वर-कथानक की रोचकता एवं निरन्तरता विशेष रूप से पाठक को आकर्षित करती है । तथा अतीत के प्रसंगों द्वारा अतीत एवं वर्तमान के अंतराल को पाटने के लिए वार्तालाप का अनूठा-संमजन है ।

" अंतराल " में मनोवैज्ञानिक समस्याएं, आर्थिक कठिनाइयों और आत्म-केन्द्रित व्यक्तियों का बिखरा रूप बिखरी जिंदगी के रूप में आद्यंत चित्रित है । प्रस्तुत उपन्यास में आधुनिक मानव-संबंधों की कहानी है । विशेष रूप से भौतिक आवश्यक्ताओं की पूर्ति के लिए बने मनोशारीरिक संबंध, जो तृप्ति देने के स्थान पर और अधिक अतृप्त कर देते हैं । " सैक्स " एवं मानवीय संबंधों का चित्रण भी है, जो केवल सहने के संबध हैं ।

1- " अंतराल " पृष्ठ संख्या: 168

राकेश ने इन संबंधों का विश्लेषण करते हुए आधुनिक समाज के व्यक्तियों कीसमस्या, अपने प्रमुख पात्रों द्वारा प्रतीकात्मक रूप में, निरूपित की है ।

आज समाज में भौतिकता का आधार, संबंधों के टिके रहने की शर्त बन गया है । कुछ संबंध ऐसे भी होते हैं जिन्हें किसी संज्ञा से अभिहित नहीं किया जा सकता फिर भी ये कई बार अन्य संबंधों से अधिक महत्वपूर्ण सिद्ध हो सकते हैं । मोहन उपन्यास में एक स्थान पर कहते हैं -

" हम जिन्हें संबंध कहते हैं , वे केवल एक मंच पर
अभिनेताओं के आपसी संबंध हैं, और कुछ नहीं । " (1)

ये नामहीन-संबंध इतने वायवी और सूक्ष्म हैं कि मनुष्य इन्हें कोई नाम नहीं दे सकता । और इनको पाने में निरंतर प्रयत्नशील रहता है अनाम संबंधों को पाने की उत्कट-लालसा और संबंधों को न पा सकने के कारण निरंतर असफलता उसे अत्यंत व्याकुल बना जाती है ।

समाज में व्यक्ति का व्यक्ति से संबंध केवल आर्थिक आधार पर टिका है । आत्मीय-संबंधों का अभाव, विघटन की स्थिति उत्पन्न कर देता है । समाज में यह समस्या अधिक जटिल है । यही कारण है कि आज के समाज में पारिवारिक समस्या छिन्न-भिन्न है ।

प्रस्तुत-उपन्यास के प्रमुख पात्र कुमार और श्यामा एक-दूसरे के लिए जो कुछ हैं, उसके अतिरिक्त, कुछ और हो सकने की बैचेनी ही उनके बीच का अन्तराल है और उनकी असंतुष्टि का कारण भी । हम कह सकते हैं कि -

" अन्तराल " आज की भाषा में लिखी गई आज के मानव-संबंधों
की एक आन्तरिक कहानी है । पहली बार आज की संश्लिष्ट
मनःस्थितियों को इतना अनायास-शिल्प मिल सका है । " (2)

1- " अन्तराल- पृष्ठ संख्या: 114
2- " उपन्यासकार मोहन राकेश - अन्तराल के विशेष संदर्भ में- पृष्ठ भाग

उपर्युक्त उपन्यास में अपने परिवेश का गुणीभूत-चित्रण है । आज मानव-संबंधों में पर्याप्त परिवर्तन हो रहा है यह परिवर्तन समाज को भी बदल रहा है इसमें यथार्थ की प्रस्तुति है और आदर्श का संकेत है किन्तु यथार्थ ही उसका वरेण्य है । इस प्रकार यह उपन्यास आज के युगीन संबंधों का ज्वलंत प्रस्तुतीकरण बन गया है ।

प्रकाश्य उपन्यास " कई एक अकेले ", " स्याह और सफेद ;" " कांपता हुआ दरिया ", समाजवादी यथार्थ के नाम पर लिखे गए प्रतीकात्मक कथ्य से संग्रहित है । यथार्थ की स्थापना तथा जीवन-यापन की विधियों का सशक्त-पक्ष इन उपन्यासों में प्रतिपादित करके मोहन राकेश ने आधुनिक सभ्यता की केन्द्र-व्यवस्था को दृष्टिपथ में रखा है । युगानुकूल उत्सव-धर्मिता का भी मानसिक अंर्तद्वंद्वों के रूप में समय-सापेक्ष वर्णन इन उपन्यासों में मिलता है ।

उपन्यासकार उपन्यास द्वारा अपने युग-यथार्थ को उसकी समस्त अंतश्चेतना के साथ अपनी रचना में पाठकों के समक्ष सम्प्रेषित करता है । इसी परिप्रेक्ष्य में आज एक घुटनशील-वातावरण को बोधगम्यता के साथ व्यक्ति के सामाजिक रूप में किए जाने वाले कार्य-व्यापरों का चित्रण उपन्यास विधा का कथ्य बन गया है, जिससे व्यक्ति के पूर्ण जीवन के चित्र की झांकी हर प्रमाता के दृष्टिपथ में उतरती है । वर्तमान और अतीत की मनःस्थितियों का बिम्बात्मक विधान समय-बोध के बौद्धिक धरातल पर आरूढ़ होकर चेतना के विविध-स्तरों को उघाड़ने में सफलीभूत है । उपन्यासों के सामान्य पात्र व्यक्तित्व की प्रधानता को लेकर घटनाचक्र में समाहार करते हैं। व्यक्ति-चेतना तात्कालिक संदर्भ में प्रस्तुत हो जाती है । अतीत-स्मृतियों और पूर्वकालिक अनुभव, वर्तमान के किसी क्षण-विशेष में मिलता-जुलता संकेत अथवा स्थिति पाकर चेतना के स्तर पर एक लगातार क्रम के रूप में निश्चित होता है । इन कथानक-जन्य चेतना-प्रवाह ने किसी मूलभूत-अनुभूति की चेतना का बल दिया है, या फिर उससे संबंधित विभिन्न

घटना-रूपों की दुर्निवार प्रतीतिमानस में अनगिन-भाव और विचार-रूपों की सृष्टि की है पारस्परिक विरोधी-संवेदनात्मक स्थितियाँ कई ओरों-छोरों से प्रस्तुत-कृतियों में प्रभावांकन करने में सफल हुई हैं । मोहन राकेश स्मृति-अंकन के इस चेतना-प्रवाह को सार्वभौमिक तो नहीं लेकिन सार्वदेशिक अवश्य बना देते हैं जिनमें प्रतीकात्मकता की झलक है और मानव-मन की कसक है । इन उपन्यासों के उपर्युक्त पात्र द्वंद्वात्मक भौतिकवाद के प्रश्रय को लेकर चेतना के धरातल पर जीते हैं । पूर्वापर स्मृतियों का आरोपण, मनोविश्लेषणात्मक कथ्य की सृष्टि को ओर आगे बढ़ाता है ।

औपन्यासिक संबद्धता परिवेशात्मक सावधानी बरतती हुई चेतना-प्रवाही बन जाती है फिर इन विशेष उपन्यासों में इस पद्धति का प्रयोग बुद्धिचेता उपन्यास-कार के असीम-कौशल से सफल हुआ है । आज का उपन्यास, कथावस्तु की दृष्टि से आत्मकथात्मक के रूप में अवचेतन की प्रतिक्रियाओं को क्रियाशील बनाने में अधिक सिद्ध है, जिससे औपन्यासिक शिल्पीय सौंदर्य और अधिक निखर जाता है । इन उपन्यासों के सभी पात्र अपना-अपना पृथक-पृथक अस्तित्व लिए हुए हैं । संस्कारों के धरातल पर वे पात्र अर्जित-यथार्थ जीवन के तथ्यात्मक रूपों से बिछड़ गए हैं जिससे उनके सामर्थ्य और भाव-प्रेषणीयता से शक्ति प्रदर्शन हुआ है । मोहन राकेश विविध चारित्रिक पात्रों को जीवन संदर्भों के व्यापक परिवेश में व्यक्त करते हैं । उन्होंने मानवीय संवेदन का महत्वपूर्ण-आयाम वैयक्तिकता के संदर्भों और सूत्रों में जोड़ा है । समग्रता का ध्यान करती हुई लेखिका डा० सुषमा अग्रवाल औपन्यासिक शिल्प-गठन को समाकलित करते हुए लिखती हैं -

> " संवादों में प्रयुक्त भाषा में आए रुक रुककर
> लिखे और बोले गए शब्दों के बीच पात्र की
> बैचेन मनःस्थिति के बिंब कांपने लगते हैं । कोई-कोई
> संवाद तो इतना व्यंजक है कि उसमें न केवल पात्र के
> अपितु समूचे परिवेश की तखती सिमट आई है ।
> संवादों की शैली में एक ऐसी कसावट है एक ऐसा
> नैरन्तर्य है उसमें आगे-पीछे के सारे संबंध अनुस्यूत हो गऐ ।" ‌(1)

1- मोहन राकेश : व्यक्तित्व और कृतित्व - पृष्ठ संख्या: 26

मोहन राकेश ने पारिवारिक मानवीय-संबंध तथा वैयक्तिक मानवीय-संबंध द्विधारणाओं से प्रयुक्त कर आज की मानव-कहानी को सफलता-पूर्वक चित्रित किया है । आज के समाज में भावना का स्थान बुद्धि ने लें लिया है - इसी दृष्टि से उपन्यासों से सर्वाधिक सजीवता एवं लोकप्रियता बरती जा रही है ।

मानव चूंकि वैयक्तिक हो गया है । काम-मूलक-कुण्ठा तथा अर्थमूलक-कुण्ठा दाम्पत्य-जीवन में दरार पैदा कर देती है । इनका प्रतीकात्मक बीजारोपण करते हुए युग-बोध को सचमुच राकेश ने आधुनिकतम बोध के साथ उभारा है । जैसा कि बहुत ही गम्भीर परिस्थितियों में सजीवन का बोध उपन्यास में पात्रों द्वारा उभारा गया है । लेखक ने व्यक्तिवादी पात्रों के सृजन के द्वारा ही व्यक्तिवादिता का उद्देश्य इन उपन्यासों में पूरा करना चाहा है । इस युग में आधुनिक-युग के - सांस्कृतिक जीवन का खोखलापन, संत्रस्त व्यक्तियों के चित्रण में सन्निहित है ।

(ग) नाटक और एकांकी साहित्य -

मोहन राकेश का लक्ष्य आजीवन साहित्य लेखन ही रहा । उसमें भी वे नाट्य-विधा में विलक्षणता के साथ रूपक-जगत में अवतरित हुए । बम्बई, शिमला, जालंधर तथा दिल्ली नाट्य-लेखन के स्थल आज भी प्रसिद्ध हैं । उन्होंने नाट्यकला के प्राचीन मानदण्डों के कटघरे से निकलकर युगीन-जीवन के कथ्य और शिल्प को नाट्य-विधा में स्थान देकर एक नवीन क्रांतिदर्शिता का परिचय दिया । वर्तमान जीवन की विसंगत परिस्थितियों और अंतसंघर्ष में टूटता सामान्य-मनुष्य ही - नाटककार का लक्ष्य बन गया । बाह्य-संघर्ष की अपेक्षा अंतर्द्वंद्व, विशिष्टता और महान व्यक्तित्व की अपेक्षा खण्डित, पराजित एवं संघर्षरत मानव का चित्रण उनके नाटक की विशेषताएं रहीं । राकेश के व्यक्तित्व के अनुरूप ही नाट्य-संवाद-शैली, मनमौजी के व्यक्तित्व को उन्मीलित करती है । इसी संदर्भ में बासु भट्टाचार्य ने लिखा है -

> " राकेश का जन्म देश-विभाजन-बिन्दु पर हुआ और
> उनका पेशा था हिन्दी नाट्य-रचना को आगे बढ़ाना ।
> साथ ही व्यक्तित्व के निखार के लिए कहकहे लगाना
> और दोस्तों में गप्पे लगाना उनका व्यसन बन गया था ।" (1)

भारतीय जीवन के प्रत्येक पक्ष में नई समस्याओं और चुनौतियों ने उनके जीवन को आन्दोलित कर दिया था। तदर्थ उन्होंनें युग के नए तेवर को पकड़ने में ही उसकी सार्थकता समझी, यही कारण है कि उनका प्रत्येक नाटक युगीन जीवन की सशक्त-अभिव्यक्ति का अनूठा-उदाहरण बना है। नाट्य-रचना में परिवर्तित परिस्थितियों का मार्मिक-चित्र देकर एक नई दिशा का अन्वेषण किया। ऐतिहासिक नाम केवल आधार बनकर रह गया। उसमें नाटककार ने सामयिक युग की विसंगतियों में घुटते मनुष्य के अंर्तसंघर्ष और दिशा-हीनता का दृश्य स्थापित किया। ऐतिहासिक और पौराणिक घटनाओं के इस नए रूप में हिन्दी-रंगमंच अभी तक दिशाविहीन था, तभी सशक्त-बिम्बों और प्रतीकों के माध्यम से राकेश युग-जीवन की अवधारणा को मंच पर मूर्तवान बनाने में सक्षम हुए। नवोन्मेष सांकेतिक और कल्पनापूर्ण प्रतीकात्मक मंच नवीन प्रयोगों से रचना धर्मिता के साथ जुड़ गए, जिससे प्राचीन परम्परागत नाट्यकला के पुनरावेषण एवं अधुनातन प्रयोगों द्वारा श्रीवृद्धि हुई। इस विचार-बिन्दु पर नाटककार और नाट्य-निर्देशक की प्रयोग-यात्रा कदम-से-कदम मिलाकर चली, फलतः नाटक और मंच को अन्यान्याश्रित बनना पड़ा। इस विकसित कला में बहुमुखी-जागरूकता का परिचय मिलता है।

सन् 1958 से 1972 तक मोहन राकेश के नाट्य रूप ने मंचीय जीवन्तता को अपनाते हुए सामयिक-युग से जुड़े आयामों को भी समाहार कर लिया है। स्वातंत्र्योत्तर भारत की विसंगत परिस्थितियों में टूटते मनुष्य को नाटककार ने नई अभिव्यक्ति दी तथा सामायिक द्वंद्वात्मक दृष्टि व्यक्ति के वार्षिक विघटन तथा निरंतर पराजय से उत्पन्न कुण्ठा, अनास्था, संशय और निराशा पर केन्द्रित हो गई थी, साथ ही सामयिक समस्याओं को नाटककार कलेवर बनोने के लिसे सर्वथा नूतन दिशाओं को दृष्टिपथ में लाता है। नाना-संघर्षों की परिधि में व्यक्तित्व की हर दशकीय यात्रा को नाटककार ने सजीव-चित्रण अपने नाटकों में किया है।

इन सभी पक्षों में नाट्य-कला की विकास-यात्रा ऐतिहासिक एवं पौराणिक संदर्भों के माध्यम से इस प्रकार है -

1- आषाढ़ का एक दिन - (सन् 1958)

ऐतिहासिक वृन्त पर विकसित यह पुष्प नाट्य-साधना का हर सर्जक की प्रेरणा-स्थली को तादात्म्य कराता हुआ झकझोर देता है। वर्तमान उन्नत-स्थिति तक मानव की प्रयोग-धर्मिता कोविलक्षणता के साथ नाटककार ने इस नाटक में संप्रेक्षण कार्य किया जिसके कारण यह नाटक मनुष्य के आत्म-साक्षात्कार का माध्यम बन गया। नाट्य-प्रदर्शन की दृष्टि से रंगमंचीय परिधान के परिप्रेक्ष्य में मोहन राकेश ने एक विशिष्ट तत्वदर्शी-झलक को यहाँ प्रस्तुत किया है, जिससे नाट्य की उन संभावनाओं को बल मिल सके, जो अभिनेयता की दृष्टि से भी यथार्थ के क्षण को भोगता और पचाता है। रंग-शिल्प के व्यापक रूप को अत्याधुनिक बनाते हुए उसकी अपेक्षा की उत्सव-धर्मिता पर नाटककार ने प्रस्तुत नाटक की भूमिका में लिखा है।

" हमारे दैनंदिन जीवन के राग को प्रस्तुत करने के लिए
हमारे संवेदों और स्पंदनों को अभिव्यक्त करने के लिए
जिस रंगमंच की आवश्यकता है। वह पाश्चात्य रंगमंच से कुछ
भिन्न होगा दूसरे रंगमंच का रूप-विधान नाटकीय प्रयोगों के
अभ्यंतर से जन्म लेगा और समर्थ अभिनेताओं तथा दिग्दर्शकों
के हाथों उसका विकास होगा। " (1)

रंगचंम की विशेष परम्परा से अनुस्यूत यह अवधारणा भारतीयता की स्वस्थ प्रतीक है। इस पर आहूत होकर समूचे देश की रचनात्मक एवं ध्वंसात्मक वस्तुस्थितियों को निस्पायित किया गया है। अतीत के विसंगत और भ्रष्ट-परिवेश जीवन में व्याप्त होते अवसाद तथा निरर्थकता की अनुभूति बने। मर्यादित व्यवस्था के विद्रोह स्वरूप जीवन का आक्रांतित रूप प्रस्तुत किया गया है।

- -

1- अपवाद का एक दिन - भूमिका

इसमें कालिदास की अन्तर्वेदना तथा मल्लिका का एकनिष्ठ प्रणय-साधना का रूप विलक्षणता के साथ प्रस्तुत किया गया है । वह अपने प्रेम की गरिमामय मौन, असहनीय वेदनामय, सहनशक्ति , ऐसी धूप-शलाका थी, जो बस जलना ही जानती है, जलाना नहीं । इस नाटक में भारतीय जीवन-मूल्यों के रूप में तप-साधना, श्रम, संतोष, ममता, स्वाभिमान, अहिंसा, करूणा, साहस, निर्भीकता और सेवा परायणता आदि सभी कुछ लिखा जा सकता है । इसमें कालिदास का चरित्र , आत्म-सीमित तथा यथार्थ रूप से पलायन-वादी कवि के रूप में अंकित किया गया है । मल्लिका से विवाह न करना, कश्मीर जाते समय उससे न मिलना, पुनः उसी के साथ दाम्पत्य-जीवन प्रारंभ करने की लालसा करना, आत्मकेन्द्रित व्यक्तित्व की ही पहचान है । इस तरह कालिदास ऐतिहासिक पात्र होते हुए भी समकालीन सृजनात्मक अंतर्द्वंद्व का प्रतीक बन गया है और मल्लिका पूर्वापर प्रणय की उपासिका होकर परम्परागत-प्रणय की देवी बनकर उपस्थित हुई । कथ्य का निर्वाह इस नाटक में यथार्थ की भूमि से संबंध रखते हुए भी प्रसाद की आदर्शवादिता की ही स्वस्थ परम्परा में किया गया है । त्याग, तपस्या की सच्ची-मूर्ति मल्लिका का चरित्र प्रसाद के नाटक " स्कंदगुप्त " की पात्र देवसेना से भी कहीं अधिक उदात्त तथा परम्परानुमोदित है । नाटककार, कथानक-प्रशस्ति की दिशाएं तो नहीं खोल सका लेकिन अभिनव उपलब्धियों को यथार्थ-जीवन पर आत्मसात अवश्य कर सका है । कालिदास का सह-पात्र विलोम, धनात्मक सिद्धि का ऐसा नकारात्मक प्रतीक है, जिसके बिना आलोक की दिव्या, दीप्ति ज्योतिर्मय हो सकी । गिरती और उघड़ती व्यक्तित्व की गहराइयों को विलोम ने ऐसे मुखोटे का प्रतिपादन किया, जो जीवन के निखार में सहायक सिद्ध हुआ ।

उपर्युक्त समूचे नाटक में साहित्यिक और रंगमंचीय व्याप्ति है । कला का पोषण तथा परिस्थितियों का अन्वेषण, प्रस्तुत नाटक में समाज का सशक्त-प्रतिबिम्ब है । जड़ मान्यताओं पर प्रहार है, संवेदनशीलता का अभिव्यंजन है तथा मौलिकता का परिवेशानुकूल दावा है ।

जीवन की परांगमुखता तथा मृत्युबोध से आक्रांतिता स्थिति का पूर्ण बचाव इस नाटक पर परोक्षतः दृश्यमान है । पात्र-सापेक्ष भाव-दृष्टि को प्रभाव-सृष्टि बनाने का यह एक उपक्रम है । पात्र की दूर-दर्शिता तथा प्रण्य की अभिप्सित उदात्तता इस नाटक का मुख्य-अभीष्ट है ।

2- <u>लहरों के राजहंस</u> - (सन् 1966)

सन् 1966 में प्रकाशित यह नाट्य-रचना ऐतिहासिक परिपार्श्व में "सौंदरनंद-काव्य " से उद्भूत हुआ । कथा की प्रेरणा अश्वघोष की उपर्युक्त कृति से नाटककार ने लेकर अहम्‌वादी व्यक्तित्व की स्थापना की तथा दुविधाग्रस्त-व्यक्तित्व के विभाजन को बहुमुखी-आयामों में नाटककार ने प्रस्तुति दी है । यहां पर मोहन राकेश ने भोग और वैराग्य प्रवृत्ति को द्वंद्वात्मक संवेदना के धरातल पर उतारने का प्रयास किया राग और विराग का यह अंतर्द्वंद्व क्रमागत-परम्परा का वादी-प्रतिवादी द्वंद्व है । साथ ही एक के बिना दूसरे के अस्तित्व का प्रश्न ही नहीं उठता इस प्राचीन कथानक में व्यक्तित्व की छटपटाहट का, सुंदरी के असफल कामोत्सव के आयोजन द्वारा एक सुदीर्घ प्रतिबिम्बन है । जिसमें अलगाव की स्थिति है, मुक्ति की कामना है । यौवन तथा लालित्य बोध, उन्मादित चरणों का ताना-बाना बुनकर कथ्य को यथार्थ भूमि पर ले जाता है । एक पात्र, श्यामांग जिसका चेतन अव्यवस्थित है, जिसमें, संवेदनशीलता का आग्रह है, भटकते मन के गुह्य, संवेदनशीलता को लेकर यह वैषम्यपूर्ण जीवन को अंधेरे में ही जी रहा है । वि रोधों की प्रतिपत्तियों को सुलझाने में भी वह असफल है । नाटककार ने मानसिक स्थितियों मे चेतन-अवचेतन पक्षों को लेकर पात्र-सर्जना के नए आयाम जोड़े हैं । जहां वह अवचेतना की स्थिति में अव्यवस्थित व असंतुलित होता है वहां श्यामांग चेतन-स्थिति में ही मानसिक-चिंतन-वृत्ति का हास्यास्पद-पात्र सिद्ध होता है । व्यक्ति की चिंतनशीलता, आधुनिकता बोध के प्रश्रय को पाकर कितनी दुस्सह एवं जटिल बन सकती है ।

इस पुष्टि का निरूपण नन्द के कथन में नाटककार ने किया है । कथन है -

" तुम समझती हो तुम्हीं वह केन्द्र हो जिसके वृत्त
में मैं एक नक्षत्र की तरह घूमता हूं । परन्तु मैं अपने
को एक ऐसे टूटे हुए नक्षत्र की तरह पाता हूं जिसका
कहीं वृत्त नहीं, जिसकी कोई धुरी नहीं ।" ‡1‡

यह द्वंद्वात्मक जीवन-निर्वाह एक तीव्र आक्रोषमय अभिव्यक्ति का भी कारण है इसमें जीवन की तारतम्यता कभी चुबकीय-आकर्षण की भांति तथा कभी आधार में विकर्षण के वात्याचक्र के मंडल में गहराती रहती है । नंद के अव्यवस्थित मन का मुख्य कारण, दो विरोधी जीवन- दृष्टियों के मध्य असामंजस्य का एक क्षण है - इतिहास, जिसके छोर को पकड़कर सशक्त भाव-भूमि पर व्यक्ति खड़ा होना चाहता है । आसक्ति-पाश में मनुष्य जकड़ा हुआ है और अशांत मन के विचारों से आन्दोलित होकर परिवेशात्मक झंझा के थपेड़ो से आहत है । ऐसे मानव-मन का अंतः संवेद्य रूप नाटककार ने प्रस्तुत किया है ।

वस्तुतः मोहन राकेश का उपर्युक्त नाटक ऐतिहासिक चेतना के परि-पार्श्व में केन्द्रित होकर अंतर्मन की कसक और तड़प का सूचक बन गया है । रागात्मक तथा विरागात्मक उभय दृष्टियां ऐतिहासिक कथानक के माध्यम से जन-सामान्य को झंकृत करती हैं तथा युग-परिवेश को अतीत से प्रतिबद्धित करने के लिए उरेही जाती है । डा० नगेन्द्र ने इस ऐतिहासिक चेतना के संदर्भ को आज भी अस्मितायुक्त बताते हुए लिखा है -

" आधुनिक चेतना का मूलाधार ऐतिहासिक चेतना ही है ।" ‡2‡

मोहन राकेश ने समय की निरंतरता को पहचानते हुए गतिशीलता की अदम्य भाव-प्रेरित चिंतन के साथ अभिव्यक्ति किया है । अनुकूल एवं प्रतिकूल मन-

- -

1- लहरों के राजहंस - पृष्ठ संख्या: 149
2- नई समीक्षा नए संदर्भ - पृष्ठ संख्या: 61

जन्य विचार उल्लसित हृदय के फिसलते-स्पंदन हैं, जिसके प्रतीकात्मक रूप सुंदरी नंद के माध्यम से, यशोधरा गौतम के प्रत्यारोपण से वैचारिकता की पृष्ठभूमि पर अभिव्यंजन किए गए हैं । मानव-जीवन एक संश्लिष्ट इकाई है । नाटककार ने इस संश्लिष्टता को नाटक के विभिन्न पात्रों के स्वगत एवं परिसंवादों में अभिव्यक्ति दी है । अभिनव दिशा का अन्वेषण, यदि एक ओर उन्मादता की व्यग्रता है तो दूसरी ओर प्राचीनता का मोहभंग उसके जीवन की अभिन्न प्रवृत्ति है । नंद का स्वगत कथन इस तथ्य की पुष्टि करता है ।

" बीत जाता है सब कुछ । आशंका तभी तक रहती है
जब तक कि वह अभी अनागत में होता है । " (1)

अतीत और वर्तमान के दोनों छोरों की एकात्मता पर अधिष्ठित मानव-जीवन को व्यक्त होने के लिए प्रस्तुत नाटक के कथानक में प्रश्रय मिला है ।

3- आधे-अधूरे - (सन् 1969)

सन् 1969 में प्रकाशित यह रचना आधुनिक जीवन की यथार्थ समस्या को लेकर अवतरित हुई । समस्या-मूलक नाटकों में इसे आधुनिकता-बोध के साथ जोड़ा जा सकता है । डा० कार्लोकापोला के साथ हुई भेंट में मोहन राकेश ने अपनी समसामयिक रचना को बतलाते हुए कहा था -

" मैं आजकल ही में एक नाटक पूरा करने वाला हूं जिसका
नाम " आधे-अधूरे " है । " अधूरे " का मतलब " इनकम्पलीट "
और " आधे का मतलब " हाफ " है । यह आज के सामान्य
वर्ग से संबंधित है, जो अपने आप में आधा भी है और अधूरा भी ।" (2)

प्रस्तुत नाटक सृजनात्मक अभिव्यक्ति से तो पूर्ण है परन्तु अनिश्चितता और मानवीय अंतर्मन के द्वंद्व से ग्रसित है ।

1- लहरों के राजहंस - पृष्ठ संख्या-79
2- मोहन राकेश : साहित्यिक और सांस्कृतिक दृष्टि-पृ०संख्या:172

भोगते-क्षणों में मानवीय-मनोदशा की इसमें अतृप्त-अभिव्यक्ति है । इस नाटक में शहर के मध्य-वर्गीय परिवार की कहानी अंतर्भूत है । जिसे परिवेशानुसार संघर्षमय फिसलते कदमों की छाया का प्रश्रय मिला है । मानव की निजी पारिवारिक समस्याएँ अवनतिपूर्ण धरती की गहराई की गंध को छूती हुई पराजय और संघर्ष की कामना से अवतरित जान पड़ती है । दाम्पत्य-जीवन के साहचर्य में रहने वाले अन्य व्यक्तियों के मनोवैज्ञानिक आधार को इस नाटक में उपयुक्त स्थान दिया गया है । जीवन का व्यंग्य-परक स्वरूप अधुनातन प्रयोगों के साथ इस नाटक में उद्भावित हुआ है । प्रमादी मनुष्य की पीड़ा का तथा नैराश्य और अवसाद की छाया का घिराव नारी-पात्रों की व्यग्रता का सूचक बनकर यह नाटक अधुनातन जीवन में प्रासंगिक हो उठा है । इस नाटक का मुख्य पात्र नारी ही है , जिसके इर्द-गिर्द घूमते हुए चार पुरुष हैं । पति प्रासंगिक रूप से घर पर ही रहता है । अन्य पुरुष उस नारी के संदर्भ को लेकर विभिन्न भागों को उरेहने के लिए उपस्थित होते रहते हैं ।

यह नाटक पयोगशील रंग-चेतना से सम्पन्न है । राकेश की रंग सृष्टि प्रयोगधर्मिता से युक्त है, वह परदों से प्रकाशोन्मुख है । चार पुरुषों की भूमिका में बार-बार एक ही अभिनेता मंच पर उतारा गया है । मनुष्य के मुखौटों को इस तरह उतारना तथा प्रत्येक क्षेत्र में अभिव्यक्ति को नई-दिशा देना प्रयाग-धर्मी संज्ञा से ही अभिहित किया जा सकता है जो निश्चय ही उपयोगी सिद्ध होने के साथ-साथ प्रयोग की विभिन्न दिशाओं से प्रशस्ति-मूलक है मनुष्य के अंर्तमन को खोजने तथा समाज के मुखौटों को अनावृत्त करने की यह प्रेरणा अतनी बलवती बन गई है, जो परिवेशात्मक दर्शक के बौद्धिक धरातल पर सरलीकृत हो जाती है । मध्यम-वर्गी परिवार के व्यक्तित्व को बैनेपन तथा जीवन-संघर्ष की - जटिलता में फंसे पात्रों की पीड़ा का यथार्थांकन इस नाटक में हुआ है । जिसके विषय-बोध को समझते हुअ विष्णुकांत शास्त्री का लेख सार्थकता का द्योतक है -

" यह पूरा नाटक अस्वीकार का नाटक है । " ﴾1﴿

आधुनिक युग में जीवन की व्यस्तता वैयक्तिक चेतना के परिप्रेक्ष्य में परिवेश का समंजन करती हुई विभिन्न भूमिकाओं का प्रणयन करती है । अपनी परिस्थितियां बदलते निश्चयों में बिखराव की स्थिति पैदा कर देती है । एक ही आदमी के चेहरे पर मुखौटों का विश्लेषण बाह्य परिधान से सम्पृक्त होकर नई भावभूमियों को कुरेदता है । नाटक-निहित चार पुरुषों के रूप में भिन्न-भिन्न भूमिकाएं संग्रहित हैं । प्रस्तुत नाटक में सावित्री का चरित्र व्यक्ति-विशेषणता की क्षमता के उपयुक्त बनाया गया है । उसने सभी पुरुष पात्रों के सादृश्यता के अभिनय के साथ व्यग्रतापूर्ण आकृति में विश्लेषित किया है । उसका कथन है -

> " मैंने आपसे कहा है न, बस । सबके-सब..... सब-के-सब.....
> एक-से बिल्कुल एक-से हैं आप लोग । अलग-अलग मुखौटे पर चेहरा'-
> चेहरा सबका एक ही है । " ﴾2﴿

मनुष्य विसंगतियों का चित्र मुखौटो के विविध-संदर्भों में खींचा गया है तथा कथ्य-नियोजन को सतर्कता से एक ही अर्न्तविधान में परखा गया है ।

4- <u>अंडे के छिलके, अन्य एकांकी तथा बीज नाटक</u> - ﴾ सन् 1973 ﴿

इस नवीन कृति का प्रकाशन वर्ष 1973 है । अनेक विचार बिन्दुओं को विभिन्न चार माध्यम से पूर्वार्द्ध में प्रस्तुत किया गया है जिनके नाम हैं -

> 1-"अंडे के छिलके ;" 2- " सिपाही का मां ", 3-"प्यालियां टूटती हैं ;"
> 4-"बहुत बड़ा सवाल", । इसी क्रम में दो बीज नाटक हैं -
>
> 1- " शायद ", 2- हँ: एक पाश्र्व नाटक है - " छतरियां "

- -

1- धर्मयुग-18 जनवरी 1980 पृष्ठ संख्या: 22
2- आधे-अधूरे : पृष्ठ संख्या: 107

वस्तुतः रूपक की दृष्टि से ये बीज नाटक भी एकांकी ही है परन्तु नाटकीय स्थितियों में पात्रगत मानसिकता की प्रधानता के कारण बीज-तत्व का ही प्रश्रय उनमें ग्रहण किया गया है या यों कहें कि इन दोनों नाटकों में पात्र शारीरिक गतिमानता के स्तर पर मानसिक तौर पर ही कार्यरत है । संकलन का उत्तरार्ध-पक्ष एक पार्श्व-नाटक " छतरियाँ " की संज्ञा से रूपायित है इस प्रकार एकांकी नाट्य-सम्पदा में भी राकेश ने अपना विशिष्ट स्थान बनाया और आधुनिक भावबोध को विविधता के साथ प्रस्तुत किया जिनका ढहती सामाजिक विचारधारा मान्यताओं और संबंध-विघटन के सशक्त-प्रतीकों द्वारा समाकलन हुआ है ।

प्रथम एकांकी " अंडे की छिलके ", मध्यवर्गीय खोखली मान्यताओं को हास-परिहास-पूर्ण संवादों के माध्यम से अनावृत करता है । स्वातंत्र्योत्तर भारत का यह काल ढहती मान्यताओं को ढोती पीढ़ी की विवशता का काल है । इस एकांकी के सभी पात्र हमारे चारों ओर के जाने-पहचाने चेहरे हैं । इस एकांकी की पृष्ठभूमि में नाटककार की स्वतंत्रता के पश्चात की मनःस्थिति है । जिस स्वतंत्रता के परिप्रेक्ष्य में लोगों को कठोर यथार्थ, पदलिप्त नेता और टूटती आस्थाओं से अवगत कराया है । दूसरा एकांकी " सिपाही की माँ ", है, जो एक सर्वथा भिन्न मनोवृत्ति लेकर चलता है इसमें नाटककार ने वैश्विक शक्ति के आक्रांत पहलुओं पर विचार करते हुए त्रासद-प्रभाव को उजागर किया है । इसमें कथावस्तु का चयन ग्रामीण परिवेश से भी करता है तथा मनुष्य की आर्थिक समस्याओं के दुष्परिणामों व सहज-सहिष्णुता की भावना को उरेहता है । दो सिपाहियों के संघर्ष से युद्ध का वातावरण और सिपाही के जीवन की करुण-प्रवृत्ति का मर्मस्पर्शी-चित्रण इस एकांकी में मिलता है । "प्यालियाँ टूटती है "- एकांकी, मृत-मानवता और आधुनिक-बोध के नए-आयामों को उभारता है । इस एकांकी के पात्र स्वतंत्र-व्यक्तित्व के प्रतीक बनकर उपस्थित हुए हैं। मनुष्य अपने मन में स्वीकृत-सत्य को इस प्रकार नकारने का प्रयत्न करता है। इसका परिचय माधुरी के निम्नलिखित संवाद में मिलता है ।

> " कैसी मनहूस छाया है इनकी ' यह छाया मेरे दिमाग से निकलती क्यों नहीं ' क्यों ये सब कुछ लेकर आते हैं क्यों इतना प्यार दिखाते हैं क्यों ऐसी बाते करते हैं '- " (1)

1- "प्यालियाँ टूटती है: पृष्ठ संख्या:90

प्रस्तुत एकांकी का प्रारंभ और अंत, दीवान चन्द के आगमन और प्रस्थान से होता है । "बहुत बड़ा सवाल " एकांकी आज प्रत्येक क्षेत्र में नौकरशाही की निष्क्रियता का परिचायक है । बारह पात्रों को लेकर चलने वाले इस एकांकी का प्रत्येक पात्र स्वतंत्र और जीवन्त-चरित्र रखता है तथा सामाजिक सत्य को उलझन-पूर्ण परिस्थितियों मे वाद-विवाद का विषय बनकर शक्ति का ह्रास किया जाता है । व्यक्तिगत छींटा-कशी तथा समर्थन-अवरोध के वाद-प्रतिवाद इस नाटक में संजोए गए हैं।

लघु नाट्य-प्रयोगों में बीज-नाटक उपर्युक्त वर्णित नामों से संगृहित हैं । वर्तमान युग के पारिवारिक विघटन व्यक्ति के अकेलेपन को प्रौढ़-विचारों के साथ इस नाटक में चित्रित किया गया है । " शायद" पहला बीज-नाटक है जिसमें अर्थहीन जीवन को ढोने की मजबूरी कथ्य का रूप बनती है । " शायद " आशंका निर्मित और माध्य की संदिग्धि का रूपायित नाटक है । दूसरा बीज-नाटक " हः एक रोगी की मानसिकता के अनुरूप परिवेश की संपेषणीयता इसमें चित्रित की गई है । इस नाटक के मूल में विवशता तथा नैराश्यता, हेतुक रूप अंतर्हित है । पाश्‍र्व नाटक की विधागत रूपरेखा "छतरियां" नाटक के रूप में दृष्टिगत हुई हैं । यह एक नवीन-प्रयोग है । इसमें मूक-अभिनय और रेडियो-नाटक के मिश्रण का नया प्रयोग है । नैपथ्य की ध्वनियों के आधार पर चलने वाला यह नाटक, नाट्य-रचना में एक नया-आयाम जोड़ता है। इस प्रकार " अंडे के छिलके ," अन्य एकांकी तथा बीज नाटक " नामक संग्रह के विविध-रूपक , समाज के विभिन्न-पक्षों के सभी रूप प्रस्तुत करते हैं ।

ध्वनि नाटक दृश्य-साधन की अभावग्रस्तता का प्रतिमान बनकर नाट्य-जगत में अवतरित होकर " रात बीतने तक तथा अन्य ध्वनि-नाटक मोहन राकेश के ध्वनि नाटकों में उल्लेखनीय हैं । यह संकलन उनकी मृत्यु पश्चात सन् 1974 में प्रकाशित हुआ । इस संग्रह में तीन स्वतंत्र ध्वनिनाटक "सुबह सेपहले", कुंवारी धरती, दूध और दांत तथा दो नाटकों के ध्वनिरूपान्तर-रात बीतने तक (लहरों के राजहंस) तथा " आषाढ़ का एक दिन है ।

एक संस्कृत नाटक का हिन्दी-रूपान्तर " स्वप्नवासवदत्तम् " एक कहानी का ध्वनि-रूपान्तर- " उसकी रोटी "है तथा अंतिम ध्वनिनाटक " आखिरी चट्टान तक उनके यात्रा-संस्मरण को ध्वनियों या संवादों के बल पर जीवन्त बनाए रखने का प्रयत्न है ।

यथार्थ का चित्रण और मनुष्य की अवचेतन की पहचान ने इस नाटक के संवादों को मर्मस्पर्शी बना दिया है । विभिन्न ध्वनि-प्रयोगों और वाद्य-संगीत के बल पर वातावरण को विश्वसनीय रूप दे सकते हैं । समाज के वृहत-परिवेश का दिग्दर्शन इन नाटकों की कथ्यगत विशेषता है । यायावर की व्याकुल मनःस्थिति से प्रारंभ होने वाली इन नाटकों की रचना-यात्रा अंततः भटकती हुई मन-स्थिति का का अंर्तविधान बन गई है । मर्मस्पर्शी जमीन की खोज में इन ध्वनि-नाटकों का सशक्त-रूप मानव-हृदय का अंर्तद्वंद्व है ।

:: 0 ::

-:: द्वितीय अध्याय -::

-: समसामयिक चेतना के विविध आयाम :

2- <u>सम सामयिक चेतना के विविध आयाम</u> :-

" आधुनिकता " शब्द बहु-आयामी है । आधुनिकता के अंतर्गत संस्कृति की अस्मिता का निरूपण और ऐतिहासिक परम्परा का आकलन समंजित रहता है । मनुष्य, समाज की समग्र-सृष्टि को रूपायित करने वाली प्रक्रिया, काल-संदर्भ से जुड़कर कालबोधीयता की प्रतीक बनती हैं । इन्हीं एकात्मक प्रतीकों के आधार पर मानव-जीवन संश्लिष्ट-इकाई बन जाता है । काल-विशेष की लालित्य-योजना कला की चरम-परिणति बनकर मुखर होने लगती है जिसका कला, संगीत और इतिहास के समूचे पृष्ठों पर भाव और विचार-अंकन प्रतिबिम्बित रहता है ।

प्रभाव और प्रगति का युग्म ही आधुनिक साहित्य की मूल-चेतना है, जो विविध-रूपों में उपस्थित हुई है । अस्तु युगीन नए-आयामों को उद्घाटन करते हुए एक लेखक ने नए-नए संदर्भों के नए-नए सूत्रों की व्याख्या करते हुए लिखा है कि -

> " जीवन की भौतिक, आध्यात्मिक, बौद्धिक एवं रागात्मक प्रवृत्तियों के संदर्भ में आधुनिक युग की परिस्थितियों की कसौटी पर आधुनिक साहित्य के कसाव को समझना होगा ।" (1)

युगीन चेतन से कटकर किसी भी जीवन्त-समाज को सही परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत कर पाना कठिन है । साहित्यकार संवेदनशील होता है । भाव-संवेदन की रचनात्मक गतिविधि से वह अपना संबंध इस तरह प्रतिबद्ध कर लेता है, जिस तरह मानव-जीवन की चेतन-अवचेतन स्थिति का अन्तराल समाप्त हो जाता है । हर कला के पीछे एक दृष्टि होती है । युगीन परिस्थितियों और चेतनाओं के परिवेश में जीवन-तथ्यों को पहचानने की शक्ति उस दृष्टि में निहित रहती है । प्रोफेसर रामदरश मिश्र ने साहित्य और उसके परिप्रेक्ष्य में युगीन-चेतना की दृष्टि को समझते हुए व्याख्यायित किया है -

---

1- आधुनिक युग के वातायन से : अशोक कुमार गुप्त, पृष्ठ संख्या:1

" नवीन दृष्टि से सम्पन्न व्यक्ति ही अपने समाज के नये प्रश्नों, भाव-सौंदर्य के नए-आयामों के नए-मूल्यों, नए सामाजिक संबंधों को समझ सकता है और वही सर्जन-प्रक्रिया में सिद्ध हो सकता है।" ।1।

साहित्यकार युग-सापेक्ष तलातल भाव-धारा को रससिक्त बनाकर एक ऐसे अनोखे संसार का निर्माण करता है जिसमें युगीन-चेतना की सापेक्षता का सर्जनात्मक रूप सन्निहित रहे। वैचारिक पृष्ठ-भूमि पर साहित्य और कला में जागरूकता यथा संभव रहती ही है। चाहे वह कवि हो, उपन्यासकार हो, कहानीकार हो, नाटककार हो, अपने युग का प्रबुद्ध-चेता होता ही है और उसकी संवेदना नवीनतम, युगीन संवेदनाओं को आत्मसात करती चलती जाती है। जीवन-दर्शन के संश्लिष्ट-स्वरूप को एकाग्रता के साथ समझने का उपक्रम कलाकार ने ही किया है, वह विश्व-सृष्टि के भौगोलिक इकाई के परिमापन को भी जानता है तथा वैयक्तिक अनुभूति की गहराई को भी समझता है। कलाकार की प्रबुद्ध-दृष्टि और सृष्टि प्रमाता-वर्ग से भी - तादात्म्य करने में अचूक होती है। प्रोफेसर पी०यू०एन०ई०एस०एल० ओ०के०ई०आर० ए०वाय० ने लेखक और पाठक के तादात्मीकरण पर प्रकाश डालते हुए कहा है -

" Modernity is not a matter of ideas but of the relationship of a writer with his audience " ।2।

वर्तमान-युग के वैज्ञानिक आविष्कार एवं मानवीय संवेदनाओं का विखण्डन, संबंधों की हीनता, आत्मीय एवं पारिवारिक संबंधों में बदलाव बढ़ती हुई आर्थिक विषमता एवं उसके साथ ही आर्थिक समस्याओं के साथ बिगड़ते सभी संबंध आदि सभी हमें आधुनिक साहित्य में स्पष्टतः दिखाई देते हैं, जिसका परिशीलन अधोलिखित संकेतों में द्रष्टव्य है -

---

1- आज का हिन्दी साहित्यः संवेदना और दृष्टि, पृष्ठ संख्याः 11

2- Modernity & contemporary Indian Litrature, Page-369 (Modernity in East & West : Dr.Pune Sloka Ray) 'discussion'

क- मानव मूल्य : मानवीय समस्याओं के सन्दर्भ में -

मानव-मूल्यों के विघटन की प्रक्रिया पुराने मूल्यों के जड़ हो जाने से या अर्थहीन हो जाने से आरंभ होती है । स्वाधीनता-संग्राम के समय त्याग बलिदान का जो आवेग और उत्साह था, स्वतंत्रता-प्राप्ति के कुछ वर्षों के पश्चात ही भ्रष्टाचार और दूसरे समाज विरोधी आचरणों में परिवर्तित हो गया । यह परिवर्तन मानव-मूल्यों के उन संदर्भों को जोड़ता है जिसमें अभिनव के प्रति आकर्षण तथा पुरातन के प्रति अनाकर्षण का स्वरूप विद्यमान रहा । साहित्य-चिंतक श्री अमृतराय आधुनिकता के परिवर्तित आयामों के संबंधों को उद्घाटित करने में अचूक दिखाई पड़ते हैं उनका वक्तव्य -

> " टेढ़ी नींव पर टेढ़ी इमारत ही खड़ी हो सकती है । यह टेढ़ापन क्या है ' यही कि फिलहाल हमारा सारा ध्यान सारा आग्रह, बाह्य-आचार की आधुनिकता पर है और मन की सच्ची आधुनिकता जो असल चीज है, उसकी ओर ध्यान देने वाले कम हैं । यही वजह है कि अकसर बड़े आधुनिक बहिरंग के नीचे से बहुत ही पुराना बहुत ही दकियानूसी मन झाँकता दिखाई दे जाता है । " (1)

क्रमागत-परम्परा को देखा जाए तो पता लगता है कि विश्व-धरातल राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय विश्व-बंधुत्व की झलक कलागत-रूपों में किसी न किसी प्रकार आ ही गई है लेकिन आज के पर्यावरण की घुटन में देशगत-राजनीति में प्रांतीय और दलीय-नीति, बिहारी, बंगाली, पंजाबी, महाराष्ट्री होने का दावा करते हुए राष्ट्रीयता के गूंजे हुए स्वर को लुप्त तो कर ही देती है साथ-ही-साथ पग-पग पर साम्प्रदायिक संघर्षों की बुनियादी रूपरेखा भी बन जाती है, जिससे आधुनिकता का व्यामोह विविध-विभक्त-रंगों में रंजित होकर सामने आता है।

1- सहचिंतन: अमृत राय लेख - आधुनिकता महारोग , पृष्ठ संख्या: 30

मानव-मूल्यों के विविध-आयामों और परिधियों में संयुक्त परिवार विवाह की पुरानी प्रथा, राजनीति एवं विचार-धारा का महत्व, तकनीकी विकास, विभाजन के संत्रास से उत्पन्न मानवीय समस्याएं ऐसे बिन्दु हैं जिन्होंने मानव-मूल्यों के विघटन की प्रक्रिया को तीव्रगामी और परिणामवाची बनाया है ।

नाटककार मोहन राकेश ने अपने नाटक "आधे-अधूरे " में व्यक्तित्व के विखण्डन और मूल्यों के अपकर्षण के संबंध में तनावपूर्ण जीवन की पहेलियों को मुखरित कर पुरूष-संख्या एक के द्वारा इस प्रकार निर्धारण करवाया है । पुरूष एक के अहम् पर चोट पड़ती है और वह उस स्थिति से उद्वेलित हो जाता है और अपनी स्थिति की झुंझलाहट को इन शब्दों में व्यक्त करता है -

> " मैं इस घर में रबड़-स्टेम्प भी नहीं, सिर्फ एक रबड़
> का टुकड़ा हूं बार-बार घिसा जाने वाला रबड़ का
> टुकड़ा । इसके बाद क्या कोई मुझे वजह बता सकता है,
> एक भी ऐसी वजह, कि क्यों मुझे रहना चाहिए इस घर में ' ﴾1﴿

हमें यह स्वीकार करना होगा कि आज की हमारी पीढ़ी ने यथार्थ के अपेक्षाकृत ठहरे अर्थात वैयक्तिक और पारिवारिक रूप को अपनी रचनाओं में अधिक स्थान दिया है । जीवन की पंकिल-गहराई में डुबकी लगाने का प्रयास नितांत-फीका है । व्यक्तित्व का विभाजन असंख्य-नगण्य तारों के रूप में टिमटिमाता हुआ दृष्टिगत होता है । मानव-मूल्यों का गतानुगतिक-स्वरूप विखण्डन के कगार पर आज लड़खड़ा रहा है, मानव की संजोई हुई अभीप्साएं विसंगति के झकोरों से झंकृत हो रही है । इन अनेक-विध प्रताड़ित उद्धरणों में आज के नए कथाकार को नए-मूल्यों की सृजना अपेक्षित हो गई और जीवन की निकटतम-धारा पर कथाकार के कदम ठिठक जाते हैं । जिसमें नैराश्य, अवसाद, कुंठा, घुटन की उद्वेगपूर्ण लहरियां संवहन कर रही है ।

- -

1- आधे-अधूरे, पृष्ठ संख्या: 42

" स्वातंत्र्योत्तर विखराव और नैतिक पतन की स्थिति को और अधिक स्पष्ट करते हुए कथाकार कमलेश्वर लिखते हैं -

" मेला उठने के तत्काल बाद ही जैसे झंडियां सुतलियां,
बल्लियां, तोरण, बिखर और फैलकर छितरा जाती हैं
वैसे ही आजादी का यह मेला उठते देर नहीं लगी और
चारों तरफ बिखराव नजर आने लगा । " (1)

स्वातंत्र्योत्तर सम्पूर्ण साहित्यिक चेतना का केन्द्रीभूत शब्द-आधुनिकता ही रहा है । इसमें मानव-मूल्य परिवर्तित होकर मानवीय समस्याओं के संदर्भ में दृष्टि-गोचर होते हैं । अद्यावधि " आधुनिकता " शब्द पर मानव-मूल्यों के संदर्भ में जितना बल दिया गया है, उतना पहले कभी नहीं । बदलाव की ललक और उलझी हुई मान्यताओं की झलक ऊर्जाशून्य होकर वितण्डावाद में भटक रही है । परिस्थितिजन्य-विसंगति उलझनपूर्ण मनःस्थिति मानव की अस्मिता पर प्रश्न-चिन्ह लगा देती है । मोहन राकेश ने स्वयं ही जीवन की सहज अनुभूति को रचना में सहज-संवेद्य बनाते हुए लिखा है -

" कहां हूं मै' क्यों हूं यहां' मेरा स्वर, पानी की लहरों
का स्वर, सब कुछ एक आवर्त में घूम रहा है । एक चील ...
एक चील सब-कुछ झपट कर लिए जा रही है । इसे रोको ।
इसे रोको । " (2)

सांस्कृतिक क्षेत्र में भी मानव-मूल्यों का बदलाव प्राचीनता के व्यामोह और नवीनता के आक्रोश में प्रतिस्थापित हुआ है । प्रत्येक चरण जीवन की छट-पटाहट लिए हुए व्यंग्योद्भूत है फिर स्वातंत्र्योत्तर-स्थिति में नए-मूल्यों के निष्कर्ष ने एक चुनौतीपूर्ण रवैया अपनाया है जिसे व्यष्टि और समष्टि का सापेक्ष संबंध बिखर कर इकाई बन गया है ।

- -

1- नई कहानी की भूमिका, पृष्ठ संख्या: 11
2- लहरों के राजहंस, पृष्ठ संख्या: 69

संबंधों का निर्वाह तथा नैतिक मूल्यों में शिथिलता का कारण पारस्परिक प्रत्यय को कचोटता हुआ, अभिनव संज्ञाओं में अवतरित हो रहा है यथार्थ की विविधता और प्रतिस्थापित मान्यताओं की व्यापकता को अंकित करने की जिज्ञासा आज के कथकार में क्षण-बोधीय बन गई है । सनातन-मूल्य बदलते-मूल्यों के मुखापेक्षी होकर आज जड़ीभूत है । चेतनता की थिरकन, उनके लिए आधुनिकीकरण की लालसा में समाविष्ट होकर नए रंगों से सुसज्जित है । दाम्पत्य-जीवन का अस्मिता-हीन उदाहरण मोहन राकेश के नाटक उपन्यास तथा कथा-संग्रहों में पग-पग पर मिलता है । जीवनोद्भूत-एकत्व की समाप्ति तथा विभाजन की विविध-रेखाएं आज एक ऐसी दृप्त-चीत्कार से आपूरित हैं, जिनका न कही मान है और न शाश्वत-मूल्य कहानीकार मोहन राकेश प्रभाव-सृष्टि और मानव-मूल्य दृष्टि को दाम्पत्य-परिप्रेक्ष्य में परखते हुए ऐसे द्वंद्व को उजागर करते हैं, जो वर्ग की समूल्यता को अर्थहीन बनाकर संज्ञापित हुई है । लेखक ने कृति की भूमिका में लिखा है -

> " पत्नी के चेहरे पर फिर भी एक करुण-मुस्कुराहट है और वह इसके हाथ में इसकी बहिन का पत्र देती है कि उसके पति ने फिर उसे बुरी तरह पीटा है और वह घर छोड़कर उनके पास आ जाना चाहती है यह एक व्यक्ति की ही नहीं, उसके पूरे समय की भी कहानी है । " (1)

लेखक सार्वनामिक संज्ञा से एक व्यक्ति की नहीं, बल्कि ऐसे जन-समूह की कथा-व्यथा को दृष्टिपथ में रखना चाहता है जो भले ही दृष्टिगोचर न हो लेकिन नींव की ईंट बनाकर जीवन-सहचर-भवन में अवतरित है ।

ख- <u>तर्क और व्यक्ति चेतना का सूत्रपात -</u>

आधुनिकता का संस्पर्श बौद्धिक धरातल पर ठोस सुदृढ़ परिणामों को उद्गीरित कर नए-नए एहसासों को नए-नए भाव-बोधों से आपूरित कर रहा है ।

1- नए बादल : भूमिका

आधुनिक संवेदना आज बौद्धिक धरातल पर इतनी उर्वर है कि सहजता का स्थान तार्किकता ने, आत्मिकता का स्थान मौलिकता ने तथा उदीप्ति का स्थान उद्विग्नता ने लिया है । आधुनिक युग का आरंभ पाश्चात्य जगत के उन स्वच्छंदता-वादी-क्षणों से माना जाता है जिनमें क्लासिकल परम्परा को दुराग्रही करार दिया था । पंद्रहवीं शताब्दी में युनान के दर्शन एवं धर्म-क्षेत्र का बदलाव फांस और जर्मन की राजनीतिक क्रांति में अलगाव के परिणाम-स्वरूप स्वच्छंदता-वादी अंकुर अंकुरित होकर नूतनता के परिवेश में आज जीवन्ता प्राप्त कर सका है, जिसका खाद्य जीवन की विसंगतियाँ एवं उलझनपूर्ण दृष्टियाँ रही हैं । प्राचीन अवधारणाओं को युगानुरूप नई दृष्टि मिली और स्वच्छंदता संक्रामक रोग होकर भारतीय संस्कृति में तर्क का विषय बन गया विश्व आज एक भौगोलिक इकाई है व्यापार के प्रसार तथा साहित्य के प्रभाव से संस्कृति के भावना-सूत्र विचार बिन्दुओं में परिवर्तित हो गए ।

हिन्दी आलोचक मनुष्य की चिंतन-शक्ति पर विचार करता हुआ आधुनिकी-करण की जिज्ञासा का प्रस्फुटन करता है । मत है -

> " मानव की प्रतिष्ठा के फलस्वरूप मनुष्य की चिंतन-शक्ति
> एवं प्रयोग शक्ति तथा विचार स्वातन्त्र्य का आंदोलन
> उठ खड़ा हुआ । " (1)

आधुनिकता कुछ वर्षों से चली आ रही मनःस्थिति है । मानव-जीवन को इस बोध-गम्यता ने इतनी गहराई से आंदोलित किया है कि व्यक्ति तर्क का सहारा लिए बिना जी नहीं सकता । आधुनिकता बुद्धि जन्य प्रक्रिया है और परिवेश से उद्भूत होकर मानव जीवन को नए आयाम प्रदान करती है । इस अर्थ-संगति के प्रसंग में कथाकार कमलेश्वर कहते हैं-

> " आधुनिकता एक ऐसी मानसिक बौद्धिक प्रक्रिया है, जो परिवेश
> से उद्भूत होती है और समाज की गहनतर समस्याओं में उलझ जाती है
> तथा समकालीन जीवन को संस्कार प्रदान करती है । " (2)

1- आधुनिकता बोध और आधुनिकीकरण : डा०रमेश कुन्तल"मेघ"पृष्ठ संख्या: 18
2- नई कहानी की भूमिका : भूमिका

आधुनिकता एक विचार, विधि और व्यवस्था है जिसका निर्धारण समग्रता की चिंतन-पद्धति और मूल्य चक्रवृत्ति से है । मानव भाव-संवेदन की संहिति को अविस्मरणीय बनकर चिंतन-भूमि को कुरेदता है । प्रसिद्ध आलोचक डा० इन्द्रनाथ मदान का मत है -

" आधुनिकता में मध्यकालीन और रोमांटिक बोध दोनों का चिंतन और संवेदना दोनों स्तर पर है । आधुनिकता में कभी बेगानेपन और अजनबीपन का एहसास है तो कभी व्यक्ति का व्यक्ति से कट जाने का बोध है और कभी व्यक्ति का परिवेश से कट जाने का जो नगरीयकरण की प्रक्रिया का परिणाम है ।" (2)

आधुनिकता की वैचारिक प्रयोग-धर्मिता का अस्तित्ववादी-स्वरूप वैयक्तिक चेतना के साथ जुड़ा हुआ है । वस्तुतः आधुनिकता एक विशेष प्रकार की मानसिक स्थिति है, फिर मनजन्य-सृष्टि से और उसकी प्रभाव-दृष्टि से वैयक्तिक आधार पर प्रतिबिम्बित मान्यताएं नवीनता की दुहाई देने में सदैव सद्यःस्नात बनी रहती है । पाश्चात्य विचारक हाल्ट का मत है -

" Modernism in any of its manifestations is bankrupt because it repudiates precading experience because it calls for the crushing of the concious in conciousness from ascape into a world which does not exist" (3)

आधुनिकता-बोध पिछले अनुभवों को नकारता हुआ वैयक्तिक चैतन्य में चेतना की मांग करता है, भले ही ऐसे लोक में ले जाता हो जहां विचार और भाव-निरूपणी शक्ति की ही हत्या हो जाती है ।

1- आधुनिकता और हिन्दी साहित्य : डा० इन्द्रनाथ मदान, पृष्ठ संख्या:74

2_- Introduction of Modernishm Page No.9-10

नाटककार मोहन राकेश ने " लहरों के राजहंस " नाटक के ऐसे पात्र से चिंतन-पद्धति के स्वाभाविक सहज-प्रस्फुटन को निरुपित किया है , जिसकी दृष्टि भौतिकता के आवेष्टन में भोगपरक है फिर भी चिंतन-शक्ति पर कुरेदी गई भूमि मानव-जीवन के सहजोपासना की मार्मिक कथागन जाती है । पात्र सुंदरी का कथन है -

" सोचने की स्थितियां होती है अलका । जो बात इस क्षण नहीं सोची जा सकती , वह अगले क्षण सोची जा सकती है । " (1)

विचारणा की समय-सापेक्ष परिवर्तित होती रहती है । व्यक्ति चेतना का सूत्रपात वैज्ञानिक जीवन-दृष्टि ही है । आधुनिक युग ने मूल्यों का ही निर्माण तथा विकास किया है । मनुष्य समकालीन मूल्यों की ओर सचेत है तथा युग-सत्य के अनुसार ही वह उन्हें स्वीकारता अथवा नकारता है । पाश्चात्य विचारक स्टीफन स्पेंडरनेआधुनिकता को आधुनिक स्थिति के प्रति जागरुकता कहा है, जिसमें चेतन-पक्ष का प्रयोग-पक्ष बहुत सबल है ।

" The Modern is actually concious of the contemporary seen but they does not accept its value " (2)

" आधुनिक कला वह है, जिसमें रचनाकार एक अभूतपूर्व आधुनिक स्थिति के प्रति जागरुकता को एक नए मुहावरे तथा शिल्प के माध्यम से व्यक्त करता है । संस्कृति "आधुनिकता" शब्द तर्क एवं विचारधारा से समकालीन परिवेशानुसार इस तरह जुड़ा हुआ है, जिस तरह विद्रोही-स्वर राजनीतिक पैंतरे बदलने के लिए आज पारिवारिक, सामाजिक तथा राष्ट्रीय स्तर पर चिंतन के अधूरे-हस्ताक्षर देखने को मिल जाते हैं। व्यक्ति मुखौटा लगाकर बहुविध समाज में स्थानापन्न चाहता है । सार्वभौमिकता का नारा आज दरिद्र एवं ठंडा बन पड़ा है।

1- लहरों के राजहंस, पृष्ठ-96

2 = The struggle of the Modern: Page No.75

व्यक्ति की स्वाभाविक गति उन चिंतन-सूत्रों में उलझ गई है, जिनमें उसकी स्वार्थपरक गंध संवहित हो रही है । वैयक्तिक विचारणा तर्क का सहारा लेकर मुक्तता के क्रांतिदर्शी बिगुल को बजाकर आज केन्द्री-भूत धुरी बना हुआ है । प्रोफेसर लक्ष्मीकांत वर्मा ने चेतना के खण्डाखण्ड बिम्ब-विधान को यों प्रस्तुत किया है -

> " आधुनिकता वस्तुतः सभ्यता की मार्मिक वेदना है । सभ्य होने की भावना में प्रताड़ित व्यक्तित्व की संघर्ष स्थिति है । आधुनिकता बौद्धिक स्तर पर जीवन उसका विकासशील प्रक्रिया का रक्तचाप है और जितनी भी इस विकासशील जीवन के रूप में यातनाएं हैं, वे आधुनिकता-श्रेय हैं । " (1)

तर्क बनाम-चेतना आज अदम्य-लालसा को भोगने की प्रश्रय-प्रकिया है जिसकी संभावनाएं अनन्त आकार-प्रकारों में निर्माणकीलालसा से ओतप्रोत हैं ।

(ग) वर्ग-चेतना और यान्त्रिकता -

वैज्ञानिक अन्वेषण की भांति वर्गद्वंद्व का विकास उत्तरोत्तर बढ़ता ही गया है । मानव-मूल्यों और सामाजिक जीवन संबंधी विचार-धराओं के संदर्भ प्रतिबद्धता तथा अलगाव की स्थिति से जकड़े हुए हैं । इतिवृत्तात्मक समाज का ढांचा आज इतना जीर्ण-शीर्ण हो चुका है कि पारस्परिक अवबोधन उसे मृत्यु की ओर उन्मुख करने में क्रियान्वित हो सकता है । राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय शक्ति संतुलन के अभाव की रूपरेखा आज विडम्बना बनी हुई है । वर्ग-चेतना के सिसकते तथा कराहते-स्वर आज उस मृदुल-गंध की गहराई को विस्तृत कर चुके हैं, जिसमें " वसुधैव-कुटुम्ब " की भावना अंतर्निहित थी । आधुनिकतावाद के विचारों की अर्गला स्वस्थ-परम्परा के प्रतीकों को आबद्ध करने में जिस तरह सफलीभूत है, उसी तरह बिनिमेष-अस्मिता की रक्षा करती हुई भारतीय संस्कृति उदबोधन के चार आयाम अन्वेषित करनें में विफल है ।

- -

1- नए प्रतिमान, पुराने निष्कर्ष: आधुनिकता की प्रक्रिया: पृष्ठ संख्या: 41

व्यक्तिशः आपाधापी का अनुभूत्वात्मक स्वरूप दृष्टिगत हो रहा है । अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर चाहे ईराक, ईरान का उद्घोषित युद्ध हो या फिर राष्ट्रीय-स्वर पर आसाम तथा पंजाब की क्रांतिदर्शिता की विकृति हो, निस्संदेह वर्ग-चेतना उन्मादित हो, अपने ही पैरों पर कुल्हाड़ी मारने का उपक्रम कर रही है । पारिवारिक दृष्टि तथा सामाजिक दृष्टि, व्यक्तिगत स्वार्थ-लिप्साओं के अंतर्भूत होकर राष्ट्रीयता के स्वर को संधान और अनुसंधान के स्थान पर बलात् अपहरण करने में प्रयत्नशील है । प्रत्येक वर्ग जगतीतल पर हरकर सुख-समृद्धि की कामना में इतना हितवादी हो गया है कि उसे पिछले युगों से चली आ रही परम्परा, जिसे आध्यात्मवाद कहा जाता था, उससे परांगमुख हो गया है । इस रूप में मानवीय संवेदना तथा बाह्य परिस्थितियां रागबोध एवं सौंदर्य-बोध से विरक्त होकर भौतिकवादी द्वंद्व से ग्रसित है ।

सन् 1947 में भारत स्वतंत्र हुआ और भारत-विभाजन की दुर्घटना घटी, जिससे जन-मानस आंदोलित हुआ । उभरते भारत को पूंजीवाद के घेरे में एक ऐसे वर्ग ने बांध दिया जिसका संबंध राष्ट्रीयता से बिल्कुल नहीं था । तत्कालीन सामाजिक अभिव्यक्ति को कथकारों ने कथ्य का रूप दिया और लेकिन आजादी के साथ उनको अनुकरणशील होकर पाश्चात्य-जगत की ऋणी बनना पड़ा । कार्ल मार्क्स द्वारा प्रतिपादित सिद्धांत भौतिकवाद और वर्ग-द्वंद्व प्रगतिवाद के रूप में साहित्य में अवतरित हुआ । प्रगतिवादी लेखक सम्मेलन के 1936 ई0 के संदर्भ में स्मरण किया जा सकता है । मुंशी प्रेमचंद की अध्यक्षता में स्वस्थ्यालेखन निर्देशन को एक बलवती रूप-रेखा दी गई थी । आज सन् 1984 ई0 में भी मुंशी प्रेमचंद द्वारा लिखित " पूस की रात "तथा " बूढ़ी-काकी " आदि कहानियां प्रासंगिक बनी हुई हैं । मुंशी प्रेमचंद ने आदर्शवाद का मोह त्याग कर यथार्थोन्मुखी होकर ऐसी अनेक कहानियों की सृष्टि की है जिनमें बर्जुआ से प्रताड़ित सर्वहारा-वर्ग की सिसकती कथाएं हैं " कफन) कहानी के घीसू और माधव तथा " पूस की रात " का हल्कू शोषण पर आधरित समाज-व्यवस्था की चक्की में पिसते-पिसते इतने जड़ हो गए हैं कि कोई भी घटना उन पर प्रभाव सृष्टि नहीं कर पाती ।

वर्गद्वंद्व का (चेतना का) यह ज्वलंत उदाहरण है । मोहन राकेश ने युग से कदम से कदम मिलाकर आधुनिकता बोधीय-वर्ग-शिल्प को भलीभांति संजोते हुए आज की सामाजिक व्यवस्था की चुनौती को स्वीकार किया है " परमात्मा का कुत्ता " कहानी का पात्र सामाजिक व्यवस्था और दफ्तर के कामों पर व्यंग्य करते हुए अपना नाम न बताकर अपना फाइल नम्बर बताता है कहता है -

" मैं परमात्मा का कुत्ता हूं । उसकी दी हुई हवा खाकर जीता हूं और उसकी तरफ से भौंकता हूं । उसका घर इन्साफ का घर है । मैं उसके घर की रखवाली करता हूं । तुम सब उसकी इन्साफ की दौलत के लुटेरे हो । तुम पर भौंकना मेरा फर्ज है । मेरे मालिक का फरमान है । मेरा तुमसे अजल बैर है । " (1)

इस तरह अपने-आप को परमात्मा का कुत्ता कहने वाला पात्र और सब को कुत्ता कहता है उसके मन में रिश्वत और दफ्तर की देर-दराजी से बेहद आक्रोश है ।

स्त्रैण-भावना को उजागर करते हुए मोहन राकेश एक दलित तथा यंत्रवत् स्त्री की आत्म कथा-व्यथा को " आधे-अधूरे " नाटक में प्रस्तुत करते हैं । नाटककार का नारी-वर्ग की उपेक्षिता तथा दमनशीलता का वात्याचक्र यथार्थ-भूमि पर ला खड़ा कर देने का यह उपक्रम है । सनातन-परम्परा से चली आई वे लकीरें जिनकी वैज्ञानिक मिति नहीं है, जिन्हें आधुनिक दृष्टि में शासित और शासक की गतिविधि की संज्ञा दी जा सकती है । उनका समग्र-नारी की अंतश्चेतना के रूप में नाटककार ने एक स्त्री-पात्र से इस प्रकार कहलवाया है ।

" यहां पर सब लोग समझते क्या हैं, मुझे ?
एक मशीन, जो कि सबके लिये आटा पीस-पीसकर
रात को दिन और दिन को रात करती रहती है । " (2)

1- सामान्य हिन्दी संकलन भाग-2 " परमात्मा का कुत्ता : पृष्ठ संख्या:109
2- " आधे-अधूरे : पृष्ठ संख्या: 47

यूनानी प्राचीन दार्शनिक का मत था कि मानव-मुक्ति के लिए धार्मिक रूढ़ियों से मुक्ति पाना अनिवार्य है । कार्ल-मार्क्स ने वर्ग-चेतना द्वंद्व में इस-तथ्य की ओर पुष्टि की कि केवल धार्मिक रूढ़ियों से मुक्ति पा जाना ही नहीं अपितु उन सभी मान्यताओं एवं अवधारणाओं से भी छुटकारा पाना है जिन्होंने मानव को सदा से धुन में फंसा रखा है । इस प्रकार मुक्ति का अर्थ शोषण से मुक्त होना है, फिर यह शोषण चाहे पारिवारिक हो या सामाजिक । मार्क्स की इस नई विचारधारा ने विश्व-धरातल पर नए बीजवपन किए भौतिकवाद और वैज्ञानिक प्रत्यक्षवाद में विश्वास करने वाला यूरोप क्रमशः विश्व-घुटन की चपेट में आकर लड़खड़ाने लगा और वर्ग-द्वंद्व की वैज्ञानिक-भित्ति को परिपालन करने में सफलीभूत हुआ । विचारक नीत्शे ने तो राजनीतिक नृशंसताएं और सामाजिक उच्छृंखल-ताओं पर विचार करते हुए आध्यात्मवादी ईश्वर को भी मृत घोषित कर दिया। उनका मत है -

" God is dead, we have killed - "God" (1)

वर्ग- द्वंद्व में शोषक और शोषित का अंतराज इस तथ्य की पुष्टि करता है कि राजनीतिज्ञों के झूठे-वायदे पत्रकारों के शब्द-जाल मुनाफा-खोरों की धांधली तथा युद्ध की बर्बरता आदि का स्पष्ट कारण पूंजीवाद है । संघर्षमय अर्थव्यवस्था की बेबुनियादी रूपरेखा पर लाखों निरीह-व्यक्ति बेरोजगारी, महँगाई आदि से काल-कवलित हो जाते हैं । कुंठा, अतृप्ति, नैराश्य, अवसाद, संत्रास के पर्याय-स्वरूप कल्पना की भी, तृषित मानव की व्याख्या को वायवी लोक में कहानीकार मोहन राकेश इस तरह उद्भावित करते हैं ।

> " तीस रुपये-नकद तीस रुपये उसके पास थे जिनका वह जैसे चाहे उपयोग कर सकता था । उसने पैरों में फटे हुए जूते के स्थान पर चमकते हुए नए जूते की कल्पना की, शरीर पर शार्कस्किन की बुशशर्ट की और आर्टलिन की पतलून की कल्पना की, परन्तु तभी उसके वे सूखे हुए हाथ सामने आ गए, जिनकी उंगलियां बढ़े हुए नाखूनों के अनुपात में छोटी प्रतीत होती थी, और वह विटामिन "बी" की गोलियों, नारंगियों और मक्खन की टिकियाओं की कल्पना करने लगा । " (2)

1- Existantialism for & against Page No.22
2- नए बादल : फटा हुआ जूता, पृष्ठ संख्या: 65

कहानीकार ने राय द्वारा जिस अतिरिक्त तथा विकृत मनःस्थिति का यथार्थ-चित्रण कराया है जिसका संबंध मनोविश्लेषण-वादी अवचेतन प्रक्रिया के सन्निकट है । अवचेतन-धरातल पर वह तुष्टिकरण का यह उपक्रम कल्पना-विधायनी-शक्ति द्वारा करता है । प्रस्तुत अवतरण वर्ग-चेतना का सूक्ष्म-मनोवैज्ञानिक चिंतन-सूत्र है जिसमें व्यक्ति और उसके वैयक्तिक रूप विचित्रताओं से आपूरित होकर कल्पना के रंगीले स्वर-संधान से प्रयुक्त होता है । अर्थव्यवस्था की स्थूल-श्रृंखला मनोद्भूत-कल्पना में व्याख्यायित होकर वस्तु-सत्य को मुखरित कर रही है, जिसमें धनाभाव की अर्थ-दृष्टि वर्ग-द्वंद्व के परिप्रेक्ष्य में स्पष्ट है ।

समूचे भारत में तकनीकी विकास और औद्योगिकीकरण के क्षेत्र में उल्लेखनीय-वृद्धि हुई है । कल-कारखानों में तो सुख-सुविधा के साधनों में भी वृद्धि हुई । परिणामतः प्रति व्यक्ति औसत आय एवं व्यय दोनों में ही वृद्धि हुई है । व्यक्ति का स्थान यंत्र ने और निर्जीव यंत्र का स्थान सजीव व्यक्ति ने लेकर परस्परिक जीवन्ता के आधुनिक परिवेश को नई-दिशा दी है । यांत्रिकी दबाव से प्रभावित और विघटित होते मूल्यों के संदर्भ में महाराज कृष्ण जैन ने लिखा है -

> " मानवीय वस्तुओं का नष्टीकरण (अर्बनाइजेशन) आर्थिक प्रतियोगिता सत्ता का सकेन्द्रण, मानवीकरण, तीव्रगामी संचार-परिवहन प्रणालियाँ, मनोरंजन के यांत्रिक साधन नए विध्वंसक यंत्र, यांत्रिकी के कुछ तत्व हैं जो जीवन को भयानक रूप से अस्तव्यस्त कर उसकी जड़ो को खोखला करते जा रहे है । " (1)

सतत्-वेगमय जीवन की अवकाशहीनता, निरवधिता, अजनबीपन और अनेक कुंठाएं तथा विकृतियाँ जन्म ले रही हैं । सर्वत्र व्यक्ति और व्यक्ति के बीच यंत्र दीवार बनकर खड़ा है तथा मानवीय संबंध असंदर्भित हो गये हैं।

- -

1- सचेतना : पृष्ठ संख्या: 56

महानगरों में तकनीकी औद्योगिक प्रशिक्षण संस्थानों की स्थापना हुई फलतः यांत्रिकता के विविध-चरणों का विकास हुआ । आज यंत्र ने मनुष्य को स्थानापन्न किया है । यांत्रिकता के प्रसार ने कार्यरत व्यक्तियों को " आउट साइडर " बना दिया है तथा बहिर्गमन के लिए विवश कर दिया है । इस मानव-मूल्य परिवर्तनों के साथ कथाकार मोहन राकेश स्वयं को जोड़ सके हैं । साहित्यकार स्थूल यांत्रिकता के प्रश्न ही कथानक में अवतरित न करे लेकिन उन सूक्ष्म भावों एवं विचारों को पात्रों के अंतर्मन में समायोजित कर ही देता है जिनकी यंत्रवत् गत्यात्मकता स्पष्ट हो जाती है । " आधे-अधूरे " नाटक में पुरुष दो ﴾सिंघानिया﴿ सावित्री का बॉस है । वह आज के यांत्रिक भाव-वहन करने वाले पुरुष का जीवन उदाहरण है क्योंकि सावित्री के घर आकर-वह जिस तरह बात करता है उससे यही स्पष्ट होता है कि सिंघानिया उस आधुनिक स्वरूप का प्रतिनिधि है जिसका संपर्क अनेक लोगों से होता है और वह आत्मीयता प्रदर्शित करने के लिए उनसे बातें करता है, जो एक भूल-भुलैया सी ही प्रतीत होती है । आधुनिकता और तकनीकी प्रगति एंक सोपानबद्ध प्रगति जैसी प्रक्रिया है जिसका संबंध और निर्वाह मनुष्य की स्वतंत्र गति से बेमेल है । डा० विमल ने आधुनिकता और तकनीक का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत करते हुए कृत्यात्मक अनुभव को दृष्टिपथ में रखा है । उनका मत है -

> " यदि आधुनिकता को हम तकनीक के समक्ष रखें तो हमें आधुनिकता की विकासशील स्थिति को भी एक अंतहीन-प्रक्रिया मानना पड़ेगा । तकनीक का दृश्यमान बौद्धिक सक्रियता का भौतिक गवाह है जबकि आधुनिकता उन प्रमाण के दायरे में नहीं आती । " ﴾1﴿

तकनीक-उद्भूत यांत्रिकता एक विकास क्रम है । वह क्रम कमोवेश की तरह चलता रहता है । यांत्रिकता में एकरूपता जैसा संक्रामक भाव तिरोहित रहता है ।

- -

1- आधुनिकता : साहित्य के संदर्भ में, पृष्ठ संख्या: 45-56

देश-देशान्तर सामाजिक मूल्यों में यांत्रिकता आधुनिकता की संवाहिका बन गई है । गत्यात्मक संश्लिष्ट के अनुसार यांत्रिकता और आधुनिकता दो अन्तर-संबंधित पक्ष हैं । यांत्रिकता का विकास आधुनिकता की मानसिकता का ही प्रतिफल है और वह एक ऐसा प्रभुत्व भी है जो संयुक्त कर उसे एक नई विशेषीकृत संज्ञा दे डालता है । उपन्यासकार अज्ञेय ने आधुनिकता के बदलते निष्कर्षों को परखते हुए "लिखि कागद कोरे" कृति में बताया है -

> " मेरी दृष्टि में आधुनिकता एक अलग अनगढ़-चीज है । वह एक सिद्ध-स्थिति नहीं एक प्रक्रिया है । संस्कारवान होने की क्रिया को ही मैं आधुनिकता मानता हूं, जो संस्कारी हो चुका है अब स्थिर है, वह मेरी दृष्टि में आधुनिक नहीं है । " ॥1॥

विश्व मशीनी-सभ्यता की पकड़ में आबद्ध है । मनुष्य सुख-सुविधाओं के बीच अशांत और आत्म-निर्वासित होकर विरक्ति तथा मृत्यु के दर्शन की रचना करता है । यांत्रिकता के कारण बेरोजगारी, श्रम का अभाव महंगाई, आर्थिक असुरक्षा, भविष्यहीनता और अन्य कई प्रकार के भ्रष्टाचारों का शिकार होते हुए भी इन स्थितियों से जूझने की आकांक्षा जन-मानस में कहीं न कहीं अवश्य ही दिखाई देती है ।

यांत्रिकता के कारण व्यक्ति जीवन की कठिनाई से हारकर मूल्य अपकर्ष की ओर उन्मुख हो गया है । जीवन के प्रति अनास्था तथा पराजय का स्वर व्यक्ति के अंर्तमन में इस तरह घुल गया है कि वह विषम-परिस्थितियों के मध्य-जीवन जी सकता है लेकिन यांत्रिकता की अनिवार्यता से व्यक्ति की व्यर्थता उसे अस्मिता-हीन बना रही है । समाजवाद नारों के बावजूद व्यक्ति-व्यक्ति में विच्छिन्नता और अकेलेपन के एहसास से समग्र विश्व आक्रांत है । यांत्रिकता के उत्तरोत्तर विकास के परिप्रेक्ष्य में यदि विचार किया जाए तो डा०रामदरश मिश्र की उक्ति बरबस स्मरण हो आती है । उनका मत-

> "विश्व-एकता के सारे प्रयासों के बावजूद हर देश अपने को असुरक्षित और महायुद्ध तथा विनाश की छाया के नीचे से गुजरता अनुभव करता है । " ॥2॥

1-नए प्रतिमान पुराने निष्कर्ष, पृष्ठ संख्या: 41

2-आज का हिन्दी साहित्य-संवेदना और दृष्टि, पृष्ठ संख्या: 30

साहित्यगत विचारधारा को यदि अनावृत्त किया जाए तो प्रतीत होता है कि मानव-मूल्यों के झरोखे से विसंगतियों की दृष्टि नूतनता के आकर्षण के फलस्वरूप सृष्टि को ऐसे महागर्त की ओर ले जाकर निमग्न करना चाहती है जिसके ओर-छोर अथवा आदि और अन्त मूल-पहचान को खोकर अपने- पन के सांस्कृतिक अध्याय विलुप्त कर देगी ।

(घ) आधुनिक-संवेदना और समकालीन-संवेदना -

आधुनिक संवेदना से अभिप्राय उस समग्र कालबोध से है, जिसमें साहित्य की क्रमागत परम्परा पूरी एक शताब्दी को समाहार करने में सक्षम है और समकालीन संवेदना का तात्पर्य जीवट-साहित्यकार की कालजयी-कृतियों के माध्यम से जीवन के मूल्यों की व्यवस्था का आरोपण है । समकालीन साहित्य में संत्रास, मृत्युबोध, टूटन, अकेलापन आदि जीवन-मूल्यों के विघटन की चर्चा इसी दृष्टिकोणों से मिलती है । आधुनिक भारतीय साहित्य में बिखराव की सतत् प्रयोग-धर्मिता इस दृष्टिकोण से पूर्ण-रूपेण प्रभान्वित नहीं है । आधुनिकता हमारी समाज व्यवस्था पर आधारित है, जिसमें ऐतिहासिक परम्पराएं तथा सम-सामयिक परिस्थितियाँ भिन्न रही हैं । इस दृष्टि से भारत का आधुनिक साहित्य इतिवृत्तात्मक अधिक तथा मौलिक कम बन पड़ा है । भाव-संवेदन के साहित्यगत धरातल पर उपर्युक्त दोनों संज्ञाओं में मूलभूत अंतर है आधुनिक संवेदना जहाँ एक ओर एकत्व के खण्ड्याखण्ड-मूल्यों की धरोहर है तद्नुरूप समकालीन साहित्य असंगति तथा अतृप्ति की भावना के परिव्याप्तिकरण का स्वरूप बनकर आधुनिकता की पराकाष्ठा सिद्ध हुआ है ।

समकालीन साहित्यकार मूल्यहीनता के अवरोध को झुठला नहीं सकता इसीलिए तत्कालीन साहित्य में अराजकता तथा कटुता की झलक देखने को मिलती है । समकालीन भाव-संवेदन नए मूल्यों की स्थापना करता हुआ विसंगतियों को उद्घाटित करने में युगानुरूप सफल हुआ है । जब मूल्यों का ह्रास और सामाजिक संबंधों में बिखराव दिखाई पड़ता है, तब रचनाकार तटस्थ भाव से समकालीनता के परिधान को अवधारित कर लेता है । विचारधारा और साहित्य का अंत: संबंध है ।

विचारधारा का अनुमूल्यात्मक स्वरूप साहित्यकार के मन को आन्दोलित करता है । इस दृष्टि का निरूपण मोहन राकेश द्वारा प्रणीत कतिपय रचनाओं में हुआ है । नाटककार, नाटक के किसी पात्र की स्वानुभूतिपरक संवेदना को आत्मसात करता हुआ मुखरित होने लगता है । मोहन राकेश का कथन है -

> " यही तो त्रासदी है जब तक आदमी जिंदा रहता है तब तक समझता है कि है, और जब वह था हो चुकता है, तब वह जिंदा नहीं होता । वह अपने से पीछे के इतिहास को ही देख पाता है, अपने को इतिहास होते नहीं देखा पाता । अपने गुजरे का साक्षी नहीं होता । " ॥1॥

आधुनिक मन:स्थिति समकालीन मन:स्थिति से इसलिए भी भिन्न है क्योंकि आधुनिकता का संबंध मध्यकाल से जुड़ा हुआ है तथा समकालीनता का संबंध साहित्यकार के युग-सत्य से प्रतिबद्ध है । आधुनिकता का परिवेशगत अध्ययन करने पर यह प्रतीत होता है कि साहित्यकार युग-करवट के साथ प्रति-क्रियावादी अवधारणा से ग्रसित नहीं था फलत: रचनाकार स्वयं को उस परिवेश का अंग मानकर तो चलता था लेकिन आधुनिक संवेदना जिस रूप में अपने परिवेश से प्रभावित थी, उसका साधारणीकरण जन-मानस से अभी दूरागत ही बना रहा था । यद्यपि आधुनिकता की भित्ति पर स्वातंत्र्योत्तर लेखक की चित्रशाला विविध रंगानुरंजित होकर प्रभाता की जिज्ञासा की शांति का हेतुक बनी रही थी । समकालीन वैज्ञानिक उपलब्धियों के फलस्वरूप अंधविश्वासों की भर्त्सना की गई । मानव-मूल्यों की जिजीविषा के नए अध्याय का विमोचन हुआ साहित्यकार, युग-सूत्रता के आवेष्टन में स्वानुभूत के क्षणों को प्रणयन करने में असमर्थ हुआ । ज्ञान विकास और तकनीकी की नई स्थितियां उभरकर सामने आई साहित्यकार मिथक-साहित्य की उपेक्षा करता हुआ जीवन के यथार्थ - बिन्दुओं को संग्रहित करने में जुट गया ।

व्यक्ति की मनःस्थिति आधुनिकता के प्रारंभिक चरण को अतिक्रमित कर तर्क-दृष्टि पर आधृत हो गई और वही आधुनिकता की संवेदमयी संस्पर्श-भूमिका बनी । डा० नगेन्द्र का विचार है -

" आधुनिक ज्ञान-विज्ञान और टेक्नोलॉजी के फलस्वरूप मानवीय स्थितियों का नया अरोमांटिक और अभिधकीय साक्षात्कार आज होता है । " (1)

समकालीन वैज्ञानिक आविष्कारों से परिचित होने के कारण आधुनिकता-बोध के नए अध्याय स्वयं ही खुल गए । सृष्टि और भाव-दृष्टि का संयोजन अति यथार्थवादी नग्नता को लेकर काव्य और कला के रूप में प्रस्फुटित हुआ तथा पाठक वर्ग मध्यकालीन कें अंतिम छोर को पकड़कर आधुनिकता के प्रथम छोर के लिए तरसता हुआ कठिनाई का अनुभव करने लगा । आज का जीवन उलझन पूर्ण समस्याओं का स्वतंत्र उदाहरण है । प्रतीकात्म व्यंग्य-शैली से साहित्यकार युग-बोधीय कठिनता को यथार्थ कटु-सत्य में प्रस्तुत कर देना चाहता है । तथा सहृदयी प्रमाता समीक्षा के पुराने निष्कर्षों पर कृति के प्रति-पाद्य को सरलीकृत करने में असफल होता है । कदाचित प्रणेता और पाठक का वह अंतराल सामयिक स्थिति को दृष्टिपथ में रखें तो विसंगतियों के उद्घाटन द्वारा सम्पूर्ण परिवेश में सामाजिक यथार्थ को परखा जा सकता है । मूल्यों के विघटन से भी आधुनिकता और समकालीनता में पर्याप्त अंतर दृष्टिगत होता है । प्रेम विश्वास धर्म आदि के प्रति उत्तरोत्तर व्यक्ति का विश्वास उठता जा रहा है । आरोपित परम्पराएं विवशता की जंजीरें बनकर जहां व्यक्ति को पीछे की ओर जकड़ रही है , वहां समकालीन यांत्रिक युग में व्यक्ति नए मूल्यों के निर्माण की लालसा से ओत-प्रोत होकर स्वच्छंदता की प्रवृत्ति से परिपूर्ण है । इसी मूल्यहीनता की स्थिति की ओर इंगित करते हुए साठोत्तरी रचना-धर्मिता को डा० धनंजय वर्मा व्याख्यायित करते हैं -

- -

1- हिन्दी साहित्य का इतिहास : डा०नगेन्द्र पृष्ठ संख्या:450

" जीवन के अनुभव के आधार पर कहा जा सकता है कि
आज पुराने रिश्ते गायब हो गए हैं और उनकी जगह
रिश्ते का " एबस्ट्रक्शन रह गया है । " (1)

वस्तुतः आधुनिकता के विकासमान स्वरूप में स्थान-स्थान पर प्रश्नचिन्ह लगे हुए हैं व्यक्ति का मन प्रतिपल संदिग्धता से भरता जा रहा है और वैज्ञानिकता की परिधि में सभी लोग रूढ़-संबंधों की प्रतिमाएं खण्डित करने में लगे हुए हैं । " आधे-अधूरे "नाटक में जीवन के पूर्ण-बिम्ब का प्रतिबिम्बन खण्ड-खण्ड होकर परिवार की हर इकाई में बिखर गया है । स्त्री-पुरुष के पारस्परिक रिश्तों में बदलाव तथा नौकरशाही में " बासिज्म "के उभरते दाँव-पेच कटु-तिक्तता की आड़ी-तिरछी लकीरो में दृष्टिगत है एक पात्र सिंघानिया आज समूचे विखण्डित मानव-जीवन का प्रतिनिधत्व करता हुआ तथा छद्मवेशी चेहरों पर नए आरोपण करने में निरत है उसका यह कथन -

" स्त्री- यह मेरी बड़ी लड़की-बिन्नी । अशोक तो आपसे
मिल ही चुका है ।
पुरुष- अच्छा अच्छा यही है वह लड़की । तुम चर्चा कर
रही थी इसकी । इसका आपरेशन हुआ था न पिछले साल'
न न न न यह तो मिसेज माथुर की लड़की का हुआ था ।
मिसेज माथुर की लड़की का' नहीं शायद, पर हुआ था
किसी लड़की का । " (2)

जटिल संग्रथित मानसिकता का उद्धरण है । बौद्धिक वैभव से संयोजित आधुनिकता व्यक्ति की निष्ठा का कारण बनती है । और समाज को सचेतन रूप से परिवर्तित करने की दिशा में लगी रहती है । समकालीनता साहित्यकार के लिए एक ऐसा संश्लिष्ट-रूप है, जिसमें वह अपने जीवन की आधारभूत विकट-समस्याओं का समाधान खोज सकता है ।

1- समकालीन कहानी : दिशा और दृष्टि, पृष्ठ संख्या: 62
2- आधे-अधूरे, पृष्ठ संख्या:48

आज का मनुष्य अपने बौद्धिक धरातल पर समुदाय से अलगाववादी नीति अपनाने की ओर अग्रसर रहा है और अपने अस्तित्व की रक्षा के लिए सतत्-प्रयत्नशील है । उसका सुदूर-अतीत से इतना सरोकार नहीं जितना वर्तमान की विडम्बना से । यथार्थता सामाजिक सभ्यता और व्यक्तित्व की समग्रता को रूपायित करने की विचारधारा ही समकालीनता में आधुनिकता है हर युग का कवि नई उद्‌भावना तथा नई-नई संवेदना के प्रकोष्ठ में घिरा पाता है । मानव संबंधों, धार्मिक प्रतिमानों, नैतिक-मूल्य मर्यादाओं आदि के परिवर्तन के परिप्रेक्ष्य में ही आधुनिकता, समकालीनता की रेखा से प्रभावांकन करती है । व्यक्ति यथार्थता के इस बिन्दु को विघटन- शील बनोने में अपने विवेक का पूरा प्रयोग करता है तथा सूक्ष्म-अमूर्तता के अदृश्यमान घेरे में नकारात्मकता को भी स्वीकार कर लेता है । आधुनिकता ने व्यक्ति को रूढ़ियों और अंधविश्वासों का परिष्कार का कारण कहा जा सकता है । परम्परागत संस्कारों मान्यताओं ने समकालीन संवेदना पर गहरा प्रहार किया है । फलत: समकालीनता कालक्रम की दृष्टि से व्यक्ति की विवेक-शीलता के परिचय का द्योतक बनी हुई है ।

बौद्धिक समंजन की गतिशीलता, व्यक्ति के तत्व विधायिनी प्रक्रिया में विकसनशील होकर सुदूर-अतीत और वर्तमान, भविष्य के परिमापन को अग्रग्राही बनाती है । कथाकार अज्ञेय का मत है -

> " यदि हम स्वीकार कर लेते हैं कि विकास की अगली सीढ़ी मानवीय चेतना का ही नूतन-संस्कार है । यदि यह स्थापना ठीक है , तो तत्कालिक समस्या है संस्कृति की जीवन के मानों के पुन:मापन की, मूल्यों के अभिनव मूल्यांकन की क्योंकि चेतना का संस्कार इसी मार्ग से हो सकता है । चेतना ,द्वारा अब तक जो कुछ अवगत हो सका है, संस्कृति उसी का तत्व-भाग है, भविष्य में जो कुछ अवगत होगा, उसकी ओर हम उसी द्वार से बढ़ सकते हैं, इसकी उपेक्षा करके नहीं । " (1)

1- त्रिशंकु, पष्ठ संख्या: 93

च- आधुनिकता और परम्परा -

आधुनिक हिन्दी-साहित्य का आरंभ भारतेन्दु-काल से स्वीकार किया गया है । सन् 1857 का स्वतंत्रता-संग्राम इस काल की महत्वपूर्ण घटना है । रीतिकाल के बाद साहित्य-दृष्टि अभिनव-चेतना की जागरूकता से परिपूर्ण होकर राष्ट्रीय स्वर-संधान से सफलीभूत हुई है और मनुष्य को उस दृष्टि से नए राजनीतिक तथा सामाजिक धरातल पर प्रतिष्ठित किया है । भले ही सन् 1850 का क्रानिकल पराभूत के पन्ने रंगता हो फिर भी भारतीय जनता में जागरूकता के प्रसार का प्रथम अध्याय यही से शुरू हुआ । आधुनिकता की विकासमान श्रृंखलाएं नव-नवोन्मेष-शालिनी कल्पना-शक्ति की स्फुरण-रेखाओं में उद्घाटित होकर विविध पक्षों का चित्रण करने में सजग रही है । भारतीय जनता अपने अधिकारों के प्रति सचेत हुई तथा अंग्रेजी शासन से मुक्त होने की लालसा का लोभ संवरण न कर सकी यह काल राष्ट्रीय-जागरण का तो काल है ही साथ ही साहित्यिक चिंतना के क्षेत्र में चतुर्मुखी जागरूकता का भी है । विचारणा प्रादुर्भाव गद्य साहित्यिकमें अपने मान स्थापित करता है । इतिहासकारों ने इसे गद्य काल कहा है । गद्य की विविध-विधाएं क्रमागत परम्पराओं की सांस्कृतिक झांकी में राष्ट्र के निर्माण की मंगलाकांक्षाओं से आपूरित होकर आलोकप्रद बनी । भारतेन्दु-कालीन साहित्य में तत्कालीन सामजिक विषमताओं और राष्ट्रीय से संबद्ध सामान्य विषयों को अभिव्यक्ति मिली, जिसे राष्ट्रीय परिवेश की देन ही कहा जा सकता है । उत्तरोत्तर राष्ट्रमुक्ति के साथ-साथ साहित्य में मानव-मुक्ति और समाज सुधार की चर्चा भी आरंभ हुई । परम्परागत नैतिक मूल्यों को आधुनिक नए-संदर्भों में परखा गया है, आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी की साहित्य-दृष्टि इस युग में अतीत के अध्ययन से वर्तमान के पथ-प्रदर्शन द्वारा शास्त्रीयता के रूप में, उपयोगितावादी एवं नैतिकतावादी रूप में राष्ट्रीय उद्बोधित-रूप में पल्लवित रही है। उन्होंने परम्परा-उद्भूत विकृत-साहित्य मानों को स्वस्थ-मान की दिशा में परिवर्तित करने पर बल दिया उनका मत है -

> " उद्रेक जनक-उक्ति अनौचित्य दर्शक-उक्ति, रस संबंधी अनौचित्य व्याकरण संबंधी अनौचित्य, नाम संबंधी अनौचित्य आदि काव्यगत दुर्बलताओं को उजागर करते हैं । " (1)

1- सरस्वती: सन् 1911, पृष्ठ संख्या: 311

तत्कालीन प्रबुद्ध साहित्य-समीक्षकों ने युगानुकूलता तथा देशीय रीति-नीति-वादिता का संबंध परम्परा से हटकर और सहृदय-वान के अंतःकरण की वृत्ति में सरलता के साथ तादात्म होना अनिवार्य सिद्ध हुआ है । युग निरूपण साहित्य का प्रमुख विवेच्य-विषय है । आचार्य रामचंद्र शुक्ल इसी दृष्टि से साहित्य का युग-तत्व से संबंध स्थापित करते हुए अपनी समीक्षा दृष्टि को लोकपक्ष पर केन्द्रित करते हैं । (1)

युग-धर्म परम्परा से हटकर साहित्य धर्म का प्रतिस्थापित रूप हो जाता है । सामान्य मनोभूमि परम्परा से ऊबकर नूतनता के आग्रह को बरबस स्वीकार करने में सचेष्टित होती है । इस गद्यकाल में मानवतावाद, गांधीवाद, राष्ट्रवाद, समाजवाद आदि के स्वर-युग-परिप्रेक्ष्य के संदर्भ में ही सुनाई पड़े । इस काल का साहित्य निस्संदेह परम्परावादी साहित्य से अलग-थलग है ।

जहां एक ओर राष्ट्रीयता का स्वर-संधान स्थूलता की आवृत्ति का सूचक है वहां दूसरी ओर गद्यकाल का तृतीय-चरण सूक्ष्म-अभिचेतना की एक जटिल, संश्लिष्ट इकाई है, जिसमें राष्ट्रीयता उद्बोधन तथा सहज मानव के सुख-दुख की अनुभूतियों का सामंजस्य हो सका है । इस काल में यद्यपि काव्य-कथ्य मिथक और पौराणिक आधार पर ही प्रणीत हुए हैं लेकिन वही काव्य कलाकार कवि गद्य रचनाओं में भाषा नैपुण्य के साथ-साथ कथ्य की रूपरेखा सामाजिक यथार्थवाद के रूप में प्रस्तुत करने को सतत् प्रयत्नशील रहे हैं । अखिल भारतीय प्रगतिशील अवधारणा में तो यथार्थ के साथ एक काल्पनिक मूल्यबोधका समन्वय दृष्टिगत होता है, जिसमें सर्वहारा वर्ग की प्रतिष्ठा-पन्न है । यही काल परम्परा की उन श्रृंखलाओं को ध्वंस कर देता है, जिनमें व्यक्ति और समाज विरोधी विनाशकारी कीटाणु कर गए थे । तत्कालीन साहित्य मार्क्सवाद के यथार्थ परखने की दृष्टि से समाजवादी बन पड़ा है । अतः प्रगतिवाद के अंतर्गत लिखा हुआ साहित्य समकालीन चेतनाके स्वरों को ध्वंस करता है । तदनंतर सामाजिक मूल्यों के विघटन के परिणाम-स्वरूप हिन्दी-साहित्य में नवलेखन का स्वर सुनाई दिया।

1- चिंतामणि-भाग-1, पृष्ठ संख्या: 129

इसे तारसप्तक और प्रयोगवादी रचनाओं में पहचाना जा सकता है । समकालीन चेतना को निर्वैयक्तिकरण का एक नया मुहावरा कालजयी बनकर अवतरित हुआ और साहित्य समीक्षक प्रमाता-वर्ग के त्रिकोणात्मक संबंध-निर्वाह में अभिनव चेतना के प्रस्फुटन को लेकर गतिमान हुआ । अस्तित्व की रक्षा का प्रश्न मनुष्य के सामने समस्या बनकर आया जिसके लिये साहित्यकार ने परम्परा के पुराने मूल्यों की केंचुल उतारकर फैंक दी तथा आदिम-स्तर के विकासमान चरण को ग्रहीत करने में कृत-कृत्य हुआ । जीवन की सामान्य गतिमूल्यों की विघटन प्रक्रिया को नहीं रोक सकी । परम्परा का संबंध आधुनिकता के नए आयामों से टूटता चला गया । मनुष्य अकेलापन लेकर समकालीन चेतना के गीत सुनने तथा गाने में रुचि लेने लगा । असुरक्षा की भावना गहरी हो गई और प्रत्यय के मिट जाने पर मनुष्य को अनवरत् तनाव की जिंदगी जीने पर विवश होना पड़ा ।

क्रमागत परम्परा की अनुस्यूत साहित्यिक अवधारणा का परिशीलन करने पर यह प्रतीत होता है कि भा-विचार, समस्त सांकल्पिक एवं असांकल्पिक क्रियाओं को स्नायु मंडल से संबंधित करता आया है । रस और भाव का व्यापक-तत्व आज निर्वैयक्तिकरण के या सचेतनावाद के उस आयाम का उद्भावन करता है, जिसे व्यक्ति ने सृष्टि के अमूर्त स्वरूप-मय देखा तथा परखा है समीक्षक अमृतराय ने सुदूर स्वस्थ-परम्परा के परिणाम पर विचार करते हुए लिखा है -

> " सजीव परम्परा वही है जो अनजाने ही हमारे मानसलोक का वायुमंडल बन जाती है । साहित्य का वास्तविक कर्मक्षेत्र यही है और यहीं पर वह हमारी चेतना को मुखरित और संवेदनाओं को परिष्कृत और समृद्ध करता है । " {1}

मानवीय संवेदना युगीन संदर्भों से प्रभावित होकर परम्परा के धरातल पर नवीनता के बीज वपन करते रहते हैं और प्राणी-संवेदना भी सम्पृक्त होने का गौरव रखती है । परम्परा परिवर्तित परिवेश में सामाजिक-अनुभवों से प्रश्रय ग्रहण कर मूल्यों की संक्रांति की चेतना को अनुभव करती है ।

- -

1- परम्परा और प्रयोग, पृष्ठ संख्या: 57

परम्परावादी समाज में मूल्यों के विघटन से सामाजिक मूल्यों में विघटन हुआ है तथा नूतनता का दुराग्रह नैतिकता के अभाव में अस्वस्थ परम्परा का द्योतक बना है । सत्ता के आचरण के कारण राजनीतिक दलों के स्वार्थ के स्वभाव के कारण विधान-सभा संसद और मुख्यत: ग्राम-पंचायत से उत्पन्न गंवई राजनीति के कारण शहरों पर पश्चिम और ग्रामों पर नगरीय विकृत-प्रभावों के कारण हमारे सामाजिक संबंधों में परम्परा अनस्यूत मूल्यों के साथ अभूतपूर्व-विघटन दिखाई पड़ता है । इतना ही नहीं पारिवारिक मान्यताएं खोखली होकर विवशता का परिचय देती है । जहां स्नेह की डोर से बंधा मनुष्य खिंचा चला जाता था वहां कृत्रिम मुखौटा परिवार के विखंडन का कारण बनता है । स्वस्थ-परम्परा के विकास के कारण बदले हुए सामाजिक ढांचे में परिवार के वृद्ध-जन युवा-पीढ़ी के आश्रय में निरंतर निरादर और अपमान सहने के लिए बाध्य है । यह परम्परा के विद्रोह स्वरूप आज का आधुनिकीकरण है । मूल्यों और संबंधों में विकास के कारण पुरानी और नई पीढ़ी का वैषम्य निरंतर बढ़ता जा रहा है । समकालीन संवेदना को लेकर लिखने वाला साहित्यकार पात्रों की विविधता को इस प्रकार चित्रित करता है जिस प्रकार जीवन मूल्यों से सम्पृक्त होने के कारण वर्तमान जीवन की विच्छिन्नता और अनास्था खण्ड-खंण्ड होकर बिखर गई है । नया कथाकार नई वैचारिक भाव-भूमि की मांग करता है तथा उसकी परिधि में उन भावमूल्यों को आबद्ध कर देना चाहता है, जिन्हें परम्परा ने या तो दरिद्र बना दिया है या फिर अनुपयोगी ।

ङ- <u>युगीन समस्यायें-</u>

नए भाव-बोधों, नए-मूल्यों, तथा परम्परा के संघात से उत्पन्न अनुभूति को नए-शिल्प-विधान में संप्रेषित करने में सक्षम साहित्य नया-साहित्य है, जिसका स्वस्थ-स्वर व्यक्ति के स्वर में ही सामूहिक स्वर बनकर मुखरित हो उठा है । साहित्य के संदर्भ में आधुनिकता के नए-मूल्य साहित्यकार की रचना-प्रक्रिया का प्रश्न बन गए हैं । आधुनिकता मात्र अवधारणा विचार अपना सिद्धांत के रूप में विश्लेषित नहीं हो सकती वह चिंतन-पद्धति की एकरूपता का भी नियोजन करती है।

डा० गंगा प्रसाद विमल ने इसी दृष्टि से साहित्य में आधुनिकता को नियत अनुशासन का नियम नहीं माना है । " (1)

आधुनिकता का संबंध साहित्य-सृजन की सम्पूर्ण प्रक्रिया के साथ है । साहित्य जीवन से प्रभावित होता है । और जीवन पर परिवेशजन्य-परिस्थितियों में घटनाओं एवं तथ्यों का प्रभाव पड़ता है तथा जागतिक अंतरंगता के कारण परस्परिक संबंध-निर्वाह सदैव बना रहता है । साहित्य में आधुनिकता युग-चेतना से जुड़ी हुई है और युग-चेतना संश्लेषण-मानवीय संवेदना है ।

आधुनिकता का नया मुहावरा रचना के सम्पूर्ण बोध का संबंध रखता है । नई कृतियां, नई जमीन खोदती हुई नई भाव-भंगिमा के साथ प्रस्तुत होती है तथा उन्हें वयाख्यायित करने के लिए पुराना मुहावरा उपयोगी नहीं हो सकता । यह भाव-प्रेषणीयता हर युग में एक प्रश्न चिन्ह बन उठी है क्योंकि जिस जीवन को रचनाकार व्यंजित करता है यह पाठक तक पहुंचते-पहुंचते नई-भूमियों को कुरेदने लगता है । साहित्य की सार्वकालिकता अभिनव के साथ समझौते में ही है क्योंकि आज हर रचनाकार आधुनिकीकरण के मंत्र से विमुग्ध है । यह अपनी स्थापनाओं और मूल्य स्थापित कर देने के जोश में भले ही खेमों में बंद हो लेकिन आज का उलझनपूर्ण जीवन उसके लिए एक स्वतंत्र-कथ्य बना हुआ है । भारतीय साहित्य में आधुनिकता बोध भी काल-सापेक्ष है । आधुनिकता ने साहित्य, संस्कृति और कला की दृष्टि से युगीन पहचान को अस्तित्ववादी बनाया और उनसे उसक सीधे-रिश्ते को जोड़कर मानव-इतिहास में समाजवादी धारणा का रूप ले लिया । सामाजिक संघर्ष, सांस्कृतिक विघटन तथा विपन्नता के नारों को भी आज के साहित्य ने आत्मसात किया हुआ है । इस युग की आधुनिकता बोधीय स्थिति हर युग के साथ मानव-मूल्यों का चोला बदलती आई है ।

साहित्य के सामाजिक प्रसंगों की पहचान समग्र-विश्व की प्रतिक्रियावादी देन है । इस दृष्टि से साहित्य-सर्जना एक जटिल प्रक्रिया बन गई है, जिसमें सौंदर्य-चेतना भावबोध, मूल्य-बोध तथा जीवन-चिंतनसभी संश्लिष्ट रूप प्रस्तुत होते है चले हैं।

हिन्दी-साहित्य में संवेदन दृष्टि के पारखी डा० राम दरश मिश्र ने मूल्यों की सार्थकता पर विश्वास प्रकट करते हुए लिखा है -

"मूल्यों का बोध तत्कालीन जीवन-संदर्भ से प्राप्त होता है । बहुत-सी मर्यादाएं और मूल मान्यताएं किसी युग में आकर पुरानी पड़ जाती है, सारहीन सिद्ध हो जाती है तथा नए-मूल्यों की खोज करती है । ... दर्शन मूल्य-बोध आदि की नवीनता साहित्य में उभरती रहती है किन्तु साहित्य-संवेदना के माध्यम से प्राचीन और नवीन को एक श्रृंखला में बांधे रखता है । (1)

रचना में कथा-कल्पना के साथ-साथ मानवीय मूल्य-संवेदना जुड़ी ही रहती है । प्रतिस्पता का प्रश्न समकालीन ध्वंसात्मकता के प्रसंग में महत्वपूर्ण हो जाता है । रचनात्मकता में लेखकों की वर्ग-चेतना प्रतिप्रक्षता और प्रति-बद्धता और भी अनिवार्य हो गई है । इस प्रसंग में रचनात्मक मूल्य तथा रचनाकार की दृष्टि विचारधारा की जटिल प्रक्रिया की समझ, समकालीन साहित्य के लिए भी एक चुनौती है । कथाकार राकेश स्वानुभूतिपरक कला-दृष्टि को अनिवार्यतः भारतीयता-विदेशीयता आधुनिकता-पुरातनता, के प्रश्नों के प्रसंग में इस प्रकार जोड़ते हैं -

" वास्तव में कला साधना एक महा-यात्रा है, व्यक्ति से विश्व की ओर लेकिन इस यात्रा के बीच की मंजिल है । हमारे वे निजी घरेलू या पारिवारिक संस्कार उसके आगे हमारे अंचल या प्रदेश के संस्कार, उसके आगे हमारे राष्ट्रीय संस्कार और उसके आगे की वे संस्कार जो समस्त मानव जाति के हैं । व्यक्ति, अंचल, राष्ट्र इन मंजिलों को तय किए बिना कोई विश्वजनी नहीं हो सकता जो लोग सीधे विश्वजनी होना चाहते हैं वे भ्रम में पड़े हैं । " (2)

- -

1- आज का हिन्दी साहित्य-संवेदना और दृष्टि, पृष्ठ संख्या:23

2- मोहन राकेश: साहित्यिक और सांस्कृतिक दृष्टि, पृष्ठ संख्या:136

कलाकार इतिहास में स्थित है उसकी उम्र समस्त इतिहास की उम्र है वह उस जमाने का भी है, जो बीत चुका और उस जमाने का भी , जो अभी आने वाला है । इसी कारण प्रसिद्ध विचारक हेब्बार ने लिखा है कि कलाकार इस जमीन का इस जर्रे का इस समूह का और इस क्षण का भी है । " [1]

साहित्य का नया परिप्रेक्ष्य वैज्ञानिक आविष्कारों तथा प्राविधि उन्नति की चर्चाओं का ही नहीं है वरन् प्रतीकात्मक तथा बिम्बात्मक युगीन मनोवृत्ति की झांकी को प्रस्तुत करने में है । वैज्ञानिक उपलब्धियों से आज का मनुष्य अंतरिक्ष में चांद और मंगलग्रह तक पदार्पण कर चुका है । यदि कोई रचनाकार उन खोजों से प्राप्त निष्कर्षों के आधार पर कविता या कहानी की रचना करे तो वह रचना-विषय-बोध के स्तर पर तो आधुनिक होगी परन्तु साहित्य-बोध के स्तर पर न कविता होगी न कहानी क्योंकि उन खोजों से प्राप्त तथ्य उसके जीवन का अभिन्न अंग नहीं बन सके । इनके साथ उनका संबंध स्थापित नहीं हो पाया । वैज्ञानिक उपलब्धियों का बोध वैज्ञानिक के लिए अपने क्षेत्र का आत्म बोध हो सकता है परन्तु रचनाकार का आधुनिक-बोध यह तब तक नहीं हो सकता जब तक कि यह उसके जीवन से सम्पृक्त होकर उसके अनुभव का अंग नहीं बनता और उसकी संवेदना को प्रभावित नहीं करता ।

आधुनिकता-बोध के नए आयाम मनुष्य की चिंतन-पद्धति को प्रभावित किए बिना नहीं रहती । जब मूल-संवेदना प्रभावित होती है । तब रचनाकार की रचना-धर्मिता में वैज्ञानिक औद्योगिकीकरण हुआ उस समय औसतन सभी भारतीयों ने सामंती संस्कारों से ग्रस्त होने के कारण इसका विरोध किया । आज यदि कल-कारखाने उसके जीवन का अभिन्न अंग बन गए हैं तथा साहित्य में यांत्रिकता का स्वर संधान सीधे सुनाई पड़ता है । विज्ञान तथा यांत्रिकी ने मानव की चिंतन-पद्धति को उसके परस्पर संबंधों को प्रभावित करते हुए उसकी मूल-संवेदना को भी

- -

1- मोहन राकेश: साहित्यिक और सांस्कृतिक दृष्टि, पृष्ठ संख्या: 134

प्रभावित किया है वैज्ञानिक, राजनीतिक तथा दार्शनिक तथ्य जब जीवन का अविभाज्य अंग बन जाते हैं तब साहित्य के अंर्तमन मानवीय संवेदना को आवृत्त कर लिया जाता है । जीवन के साथ जुड़े इनके गहन-संबंधों को साहित्य में उद्घाटित करना ही रचनाकार का आधुनिक-बोध है । साहित्य में आधुनिकता बोध- युग-चेतना से सम्पृक्त है और अंतर्दृष्टि साहित्य की स्वायत्तता की रक्षा के लिए रचनाकार को प्रयत्नशील बनाती है ।

साहित्यिक संवेदना आधुनिकता-बोध के घेरे में एक ऐसा मूल्यांकन है जिससे रचना और रचनाकार की अंर्तदृष्टि तथा उसके अनुभावों के विविध स्वरूपों का पता लगता है । 20 वीं शताब्दी में ज्ञान-विज्ञान की श्री-सम्पदा, साहित्य सर्जना और आधुनिकता-बोध में विविधवादों की बाढ़ ले आई है अनुभूति और अभिव्यक्ति का द्वंद्व, शब्द-अर्थ समझने के नए-सूत्र भाव-संवेदना की परख के आंशिक-सत्य है । साहित्य विशिष्ट-ज्ञान का स्त्रोत है । इसे केवल परम्परावादी - निष्कर्षों द्वारा समाकलन करना उचित नहीं बल्कि संरचना का समुचित मूल्यांकन के आधुनिकता के संदर्भ में आधुनिकता-बोध की समझदारी प्रस्तुत करना है । रचनाकार आधुनिकता-बोध के प्रशस्त-मार्ग पर दुस्पूह और जटिलता को भी सुपाच्य बना लेता है । जिसमें रचनात्मक मानसिकता तथा युग-सत्य के साथ व्यक्तिगत-अभिरुचि के तत्वों की समाविष्ट सदैव रहती है ।

:: 0 ::

-:: तृतीय अध्याय -::

:- मोहन राकेश के कहानी साहित्य में समसामयिक चेतना :-

3- मोहन राकेश के कहानी साहित्य में सम सामयिक चेतना-

स्वातंत्र्योत्तर साहित्यकार आधुनिक परिवेश में मूल्यहीनता की स्थिति को झुठला नहीं सकता इसलिए समकालीन साहित्य में मूल्यों के संबंध में अराजकता की स्थिति के प्रति हताशा और अकुत्यता की झलक मिलती है । आधुनिकता के परिवेश में मध्य-कालीन धार्मिक-मूल्यों को विश्रृंखल कर जिन भौतिकतावादी जीवन-मूल्यों की स्थापना हुई वे साहित्य कथ्य में खूब पनपे । धनिक-वर्ग के साथ मध्य-वर्ग भी वैभव की विलासिता-पंक में जा गिरा । वैज्ञानिक उपलब्धियों को अपनी-चेतना के अनुरूप - अपनाया गया । कभी-कभी स्वार्थ-सिद्धी के लिए पुरातन-मूल्यों की डोर पकड़कर आधुनिकता की गहराई को परिमापन करने के लिए मध्य-वर्ग को उतरना पड़ा । इस प्रकार दोहरी जिंदगी से ग्रसित और जीने की ललक से अवसरवादी लोग कवि-धर्म का प्रश्रय लेते हैं तो कभी धर्म का मुखौटा हटाकर आधुनिक हो जाते हैं समकालीन साहित्यकार मूल्यों की स्थापना करने में नहीं जुटा है बल्कि समकालीन जीवन की विसंगतियों को आधुनिक परिवेश में देखने की ललक को अपनी रचना-धर्मिता में लिए हुए है । ऐसी स्थिति में मानव मूल्य-त्वरित-वेग से विघटित होते जा रहे हैं और सामाजिक-यथार्थ, समग्रता के साथ नए-मूल्यों की वेदी बनता जा रहा है । आधुनिक परिवेश में मूल्यहीनता का प्रकाशन मोहन राकेश को कहानियों, उपन्यासों तथा नाटकों में भलीभांति मिलता है । इस विवेच्य-विषय को आधुनिक परिवेश में कथ्यगत अनुरूपता दी गई है ।

३॥क॥ आधुनिक परिवेश और मूल्यहीनता की स्थिति -

मोहन राकेश की कहानियों का मूल-स्वर आधुनिक परिवेश में मूल्यहीनता की स्थिति को उजागर करना है । उनकी समग्र कथा-यात्रा आधुनिक परिवेश के आयामों से इतनी जटिल और दुरूह बन गई है कि जीवन की बिखरती तथा टूटती स्थितियां एक व्यक्ति के असंख्य व्यक्तित्व के खण्डों में फैल गई है । उनकी "एक और जिंदगी", "मलवे का मालिक", "पांचवे माले का फ्लेट" और "जख्म" कहानियां आधुनिक परिवेश के बदलते मनुष्य की प्रतिष्ठा है । इसी वर्ग के अन्तर्गत ऐसी कहानियाँ भी हैं जिनमें जीवन के लिए संघर्ष तथा जीवन क्रम में परिवर्तन-आकांक्षी पात्रों की मनः-स्थितियों के साथ जुड़ गया है । आधुनिक नारी-जीवन के विभिन्न -सूत्रों को मूल्यहीनता की स्थिति में ही प्रस्तावित किया गया है और इसी दृष्टि से नारी-मन में निहित आकांक्षा का स्वरूप तथा उसकी विभिन्नता में निहित संदर्भ संवेगात्मकता के साथ प्रस्तुत हुए हैं । नारी मनोविज्ञान के अछूते संदर्भों की प्रस्तुति मूल्यहीनता की स्पष्ट प्रतीति है । जिंदगी का कटु-यथार्थ उनकी कहानियों में "नए बादल", "उसकी रोटी" और"परमात्मा का कुत्ता" उल्लेखनीय है ।महानगरीय जीवन की दुर्विनीतिता उनकी कहानियों का संतप्त-कथ्य रहा है । बहुधा इनकी कहानियां मनोवैज्ञानिक और यथार्थवादी - सामाजिक ढांचे को लेकर आधुनिक परिवेश के प्रयोग में टिकी हुई है । इसमें व्यक्ति का अकेलापन है, मानसिक बोझिलता है तथा समाजवादी रचना में क्रांतिदर्शिता है । बदलते-मूल्य पेचीदगी तथा जटिलता से परिपूर्ण है । कहानीकार का कथ्य प्रयोगशील मनोवृत्ति का निरूपण करता है ।

"सेफ्टीपिन" कहानी में कथ्यगत प्रयोग-शीलता आधुनिक-परिवेश से ही रूपायित हुई है ।

मूल्यहीनता की स्थिति राकेश की कहानियों में कथ्यगत दुरूहता का आवरण पहने हुए है । बाह्य-संघर्ष की प्रसिद्ध कहानी, "जानवर और जानवर" यथार्थ का तीखा स्वर-भेदन करती हुई परिवेशात्मक प्रचण्डता को तीखा बना रही है । "मिस पाल" की मिस पाल का यह कथन आधुनिक परिवेश में मूल्यों के बदलाव के व्यंग्यात्मक दृष्टि प्रदान कर रहा है । वह कहती है -

> " मेरा मतलब है कि रात को हम गरीब जानवरों में गोली मारते हैं और सुबह गिरजे में उनकी रक्षा के लिए प्रयास करते हैं ।" (1)

प्रत्युत्तर में पादरी का कथन -

> " मतलब निकलता है और वह यह कि हर जानवर एक-सा नहीं होता, जानवर-जानवर में फर्क होता है ।" (2)

वास्तविकता यह है कि राकेश के कहानी लेखन में आधुनिक परिवेश और बदलते मूल्यों का सम्मिलन प्रभाव है । अधिकांशतः कहानियों में जो अनुभूति का स्तर है, वह सीधे परिवेश, समय तथा समकालीन वातावरण में जुड़ा रहता है ।

- -

1- वारिस : "जानवर और जानवर," पृष्ठ: 163
2- वारिस : "जानवर और जानवर", पृष्ठ: 163

"परमात्मा का कुत्ता" भी एक ऐसी कहानी है जिसमें लेखक ने बदलते-मूल्यों की परिधि में अन्याय, अत्याचार, शोषण और ऐसे ही अमानवीय कृत्यों के प्रति अपनी झुंझलाहट व्यक्त की है । इतना ही नहीं इस अभिव्यक्ति में लेखक ने अत्यन्त निर्भीकता के साथ सरकारी व्यवस्था के खोखलेपन निष्क्रियता घूस-खोरी तथा विवशता के परिवेश में आदमी की मजबूरी का सफल-चित्रण किया है । "परमात्मा का कुत्ता" में सरदार करता है -

" चूहों की तरह बिटर-बिटर देखने से कुछ नहीं होता भौंको, भौंको सबके सब भौंको अपने-आप सालों के कान कट जाएंगे ।" (1)

राकेश की कहानियों में जिस सामाजिक यथार्थ से संबधित परिदृश्य को उभारा गया है उनमें मूल्यों का अवमूल्यन तथा आधुनिकता-बोध के अभिनव-चरणों पर गहराई से विचार हुआ है । इसी-प्रकार "सुहागिने" कहानी प्रेमिल संबंधों की स्मृति के बीच नारी-मनोग्रंथि का परिपाक बनाए रखती है । दाम्पत्य-मूल्य दुरूहता के झमेले में आबद्ध हो गए हैं । इस कहानी में संबंधित जटिलता आधुनिकता के परिपार्श्व में ही उरेही गई है । मनोरमा के मनुष्य के अतल में छिपी मातृत्व-कामना लावा बनकर फूटती दिखाई देती है । उसका अकेलापन, खालीपन, नीरस जीवन तृप्ति चाहता है । अकेलेपन में सान्निध्य की तलाश रूढ़ता के उभरे चिन्ह उसके लिए प्रश्न पर-प्रश्न बनते जाते हैं तभी तो प्रश्न के उत्तर में करती हुई वह कहती है कि डाक्टर ने कहा था दस टीके लगवाने से बच्चा ठीक हो जाएगा । (2)

- -

1- "परमात्मा का कुत्ता" (वारिस) , पृष्ठ संख्या: 92
2- पहचान, पृष्ठ संख्या: 45

वह पारस्परिक विचित्रता को लिए हुए है । रुचि-वैभिन्य, अलगाव बिन्दुओं पर आधुनिकता के सवालों को वह दोहराती है । वस्तुत: उन अधिकांश कहानियों का कथ्य बेमेल-रुचियों के कारण जीवन में आई रिक्तता और कटुता से परिपूर्ण है जिसे आधुनिक परिवेश में मूल्य-हीनता की स्थिति की संज्ञा दी जा सकती है ।

3(ब) पारिवारिक और सामाजिक मूल्यों में बदलाव-

सामाजिक युग में चारों ओर के परिवेश का व्यक्ति के जीवन पर जो प्रभाव पड़ता है, उतना ही पारिवारिक विसंगतियाँ अस्तित्व-बोध के संकट में संशयग्रस्त हो जाती है । मोहन राकेश ने अपने कथात्मक विषय-वस्तु के रूप में व्यक्ति के इसी अस्तित्व तथा संघर्ष के द्वंद्वात्मक क्षणों को चुना है । युग का यह कटु-यथार्थ और विसंगत दुष्प्रभाव पारिवारिक तथा सामाजिक युगीन को किस तरह झकझोरता है । आज इन मन:स्थितियों को राकेश के हर पात्र की कराहती आवाज पुष्टि करती है । मूल्यों और संबंधों के विघटन की व्याप्ति परिवार तथा समाज की परिधियों को अभिव्यक्त करता है ।

मोहन राकेश की कहानियां पारिवारिक परिवेश को व्यक्त करने वाली, गम्भीर चिंतन पूर्ण मानवीय संबंधों की कहानियां हैं । पारिवारिक दाम्पत्य-संबंधों का आधुनिकीकरण किस हद तक नवीन मान्यताओं के साथ निरूपित हो सकता है ।

इस अंतर्द्वंद्व को कहानीकार ने इस तरह समझाया है ।

> " ये (पति) जितना मुझे रोकते हैं, मैं उतना ही ज्यादा रोती हूं । दरअसल ये मुझे समझ नहीं पाते । मुझे बात करना अच्छा नहीं लगता पर जाने क्यों ये मुझे बात करने के लिए मजबूर करते हैं.... आप भी अपनी पत्नी से जबर्दस्ती बात करने के लिए कहते हैं'" (1)

वैचारिक सक्रियता और रचनात्मक जीवन्तता उनकी कहानियों में भरपूर है तभी तो डा० धनंजय वर्मा ने इनकी कहानियों के कुछ अहम् सवालों को उठाने की पहल की है ।" (2)

वैयक्तिक सामाजिक यथार्थवाद की भूमि पर नर-नारी के पारस्परिक बिखराव का रूप रिक्तता से भरता जाता है । सामाजिक बोध का चित्रण मूल्यों के बदलाव में इस तरह निरूपित हुआ है कि एक ओर परम्परा के मोह और दूसरी ओर नवीन मूल्यों के आकर्षण के बीच मनुष्य "टेंशन" में तथा "टेररर"है, मोहन राकेश की कहानियों में कथात्मक दृष्टि से । इस त्रासद स्थिति को रूपायित किया है। दाम्पत्य-जीवन की कटुता, रिक्तता के बिम्ब उनकी कहानियों में बिखरे पड़े है । मनोविज्ञान का यथार्थवाद आत्मोपलब्धि के घेरे में जकड़ा हुआ है । मनुष्य की प्राकृतिक पारिवारिक तथा सामाजिक समंजन टूट सा गया है । कहानी परिवेश को प्रतिबिम्बन होती है । "आर्द्रा" में दो अलग-अलग रह रहे पुत्रों के बीच मां की पीड़ा का प्रतिबिम्ब मनुष्य की किस विडम्बना का प्रतीक बनकर उभरा है यह तत्संबंध घुटन का ही प्रतिपाद्य है ।

1- नए बादल: अपरिचित, पृष्ठ संख्या: 81
2- सारिका मार्च 1973, पृष्ठ संख्या: 82

सामाजिकता की दृष्टि से मध्य वर्ग की मजबूरियों, विवशताओं आत्म व्यंजनाओं को सहते भोगते मानव-पात्रों में परिवेश की पकड़ ने इस तरह मूल्यों का बदलाव कर दिया है । इसका सच्चा परिहास "हक हलाल", "आदमी और दीवार", "एक और जिंदगी", आदि कहानियों में आंदोलित है । हर इकाई के माध्यम से परिवेशगत मूर्तता को अवधारित किया गया है । राकेश ने स्वयं कहा है -

> "व्यक्ति और समाज को परस्पर विरोधी एक दूसरे से भिन्न और आपस में टूटी हुई इकाइयाँ न मानकर यहाँ उन्हें ऐसी एक अभिन्नता में देखने का प्रयत्न हैं, जहाँ समाज व्यक्ति की विडम्बनाओं का और व्यक्ति समाज की यंत्रणाओं को आईना है ।" (1)

3(ग) <u>संबंध-हीनता तथा संबंधों के नए आयाम-</u>

आधुनिकता के परिप्रेक्ष्य में मानव जीवन में निहित मूल्यों का बदलाव क्रांतिदर्शिता के रूप में आज भटक रहा है । यही कारण है कि आज के संबंध त्वरित-गति से पारिवारिक रिश्तों को तोड़ते हुए दृष्टिगत हो रहे हैं और संबंधों के मध्य का हर सूत्र, हर रेशा टूट गया है । संबंध हीनता की स्थिति व्यापक धरातल पर देखी जा सकती है । यांत्रिकता के कारण आज की मानसिकता ने मानवीय संबंधों के सारे तार काट दिये हैं । प्रत्येक व्यक्ति अपनी इकाई की ही कक्षा में जीना चाहता है तथा सामने आने वाले हर व्यक्ति के अस्तित्व को नकारना चाहता है । उसमें

1- मोहन राकेश साहित्यिक और सांस्कृतिक दृष्टि , पृष्ठसंख्या:84

इतनी भी मनुष्योचित संवेदना शेष नही रह गई कि वह किसी-दूसरे व्यक्ति को विपत्तियों में साथ दे सके तथा सड़क पर चलते हुए किसी की दुर्घटना ग्रस्तता के बचाव में सहायता करे । सैद्धांतिक नैतिकता या परम्परागत, संस्कारगत रूढ़ियों को अलग हटाकर एक और पूर्वा-पर पारिवारिक तथा सामाजिक संबंधों को यथार्थवादी बना रहा है तो दूसरी ओर सह-जीवन के चलते-फिरते सद्भावी रूप आशंका की अभिव्यक्ति तथा संबंधों की जानकारी व्यक्तिशः चौधरी की मनःस्थिति के साथ यथार्थ भूमि पर उतर आई हैं । चौधरी की मानसिकता का विवरण इस प्रकार है -

" ऐसे स्वर में संबोधित किए जाने से चौधरी ने अपने को अपमानित अनुभव किया । उसने नवयुवक को तीखी नजर से देखा, वह उनसे कई प्रश्न पूछने के लिए तैयार होकर उठा था । पहले प्रश्न का उत्तर पाकर वह दूसरा प्रश्न पूछता कि उनका आपस में क्या संबंध है ।" (1)

संबंधों की खोज आधुनिक मांगों की यथार्थ-मुद्रा से तथा साहचर्य से अधूरी ही रह गई । इतना ही नहीं पारिवारिक विसंगतियों, संबंध होने के बावजूद विघटन-पूर्ण रूवैये को अपना रही है । मोहन राकेश के समानान्तर ही संबंध-हीनता का ज्वलंत उदाहरण अन्य समकालीन कहानीकारों की कृतियोंमें भी है उनके उदाहरण स्वरूप डा० राम दरश मिश्र कृत "खाली घर" कहानी का मूल कथ्य संबंध विहीनता का परिचायक बन गया है -

" परिवार के बड़े-बड़े कारखानों को पीठ पर लादकर चल पाना असंभव है जिसको खाना है वह कमाए । तमाम संबंधियों के गुथे हुए परिवार को दोनों पुराना-बोध है, सड़ा हुआ मूल्य है । " (2)

1- नए बादल, पृष्ठ संख्या: 5
2- खाली घर, पृष्ठ संख्या: 28-29

इसी लिए संयुक्त परिवार टूट रहे हैं और दूसरे मानवीय संबंधों में परिवर्तित हो रहे हैं । समकालीन परिस्थितियों में यदि पिता-पुत्र से जुड़ा है तो परलोक के लिए नहीं इहलोक के आर्थिक संबल के लिए । पुत्र यदि परिवार के वृद्धजनों को आश्रय देता है तो किसी आदर्श की स्थापना के लिए नहीं केवल दया की भावना के वशीभूत होकर अथवा जग-हंसाई के डर से । मनुष्य को संबंध अब आकर्षित नहीं करता संबंधी संबंध के घेरे में अपने ही संरक्षक को झेल नही पाते इसका अनूठा-चित्रण ऊषा-प्रियम्वदा कृत "वापसी" कहानी में हुआ है । ﴾1﴿

"वापसी कहानी के प्रमुख-पात्र गजाधर बाबू अपने ही घर में पराए हो उठते हैं पत्नी भी उन्हें समझने का प्रयास नहीं करती ।

" एक और जिंदगी ", मोहन राकेश की कहानी, दाम्पत्य-रूक्षता की जागरूक कहानी है । उसमें स्त्री-पात्र बीना अपने पति के बराबर पढ़ी-लिखी है तथा उससे अधिक कमाती भी है । उसे इस बात का अभिमान है कि वह हर स्थिति का सामना बिना किसी सहायता से कर सकती है । इधर पति भी अपने स्वतंत्र व्यक्तित्व को मिटाना नहीं चाहता । दोनों में किसी अहम् के कारण संबंध-विहीनता की स्थिति आकर खड़ी हो जाती है । बच्चे के स्वामित्व को लेकर विवाद खड़ा हो जाता है ।

> " तुमने सोचा है कि बच्चे के भविष्य का क्या होगा'
> जब अपने भविष्य के बारे में नहीं सोच सकते तो इसके
> भविष्य के बारे में क्या सोचेंगे' क्या तुम पसंद करोगी
> कि बच्चे को मुझे सौंप दो और खुद स्वतंत्र हो जाओ'
> बच्चे को आपको सौंप दूं' तो तुम समझती हो इसका
> निर्णय करने के लिए अदालत जाया जाए' आप अदालत में
> जाना चाहेंगतो मुझे उसमें भी ऐतराज नहीं है । " ﴾2﴿

1- कुछ कहानियां, ऊषा प्रियम्बवदा, पृष्ठ संख्या: 184
2- एक और जिंदगी, पृष्ठ संख्या: 141

इस वाद-प्रतिवाद के बाद दोनों ही अदालत की शरण लेते हैं। संबंध-हीनता की स्थिति बनती है और नए संबंध की खोज प्रारंभ हो जाती है। आज के परिवेश में संबंधों का बदलाव बड़ा ही सरल हो गया है। पति-पत्नी के बीच, पिता-पुत्र के बीच माँ-पुत्र के बीच तथा अन्य इकाइयों के साथ संबंधों की दूरी बढ़ती जा रही है। मोहन राकेश नें संबंध-विहीनता के रूपों को अंकित करते हुए नए संबंधों की आरोपित स्थिति पर अपनी कहानियों में गहराई से विचार किया है। कहानी-"पहचान" का कथ्य भी इस दृष्टि से विचारणीय है। "पहचान" कहानी में शिवजीत बालक के मानसिक ऊहापोह के जरिए पति-पत्नी के टूटते-संबंध समाज की उच्छिष्ट निगाहों तथा व्यंग्य_ बाणों का निशाना बनने से कतराते हैं।" ॥1॥

मोहन राकेश कृत कहानियों का कथ्य पति-पत्नी की जिंदगी और उसकी भ्रांतियों की एक लम्बी यात्रा का स्वरूप है। मध्यम-वर्ग की महानगरीय परिधि में दाम्पत्य के साथ तीसरा व्यक्तित्व जुड़ जाना संबंधों के नए आयामों को उद्घाटित करता है। भ्रांतियां बढ़ती जाती है। "एक और जिंदगी" का कथानक लीना, किशोर तथा मेहता के त्रिकोण संबंध को प्रस्तुत करता है। किशोर और लीना दाम्पत्य के रिश्ते को मजबूती के साथ निर्वाहित तब नहीं कर पाते जब मेहता का उनके बीच आगमन हो जाता है।

किशोर, लीना के प्रति उपेक्षा दैनिक व्यवहार में दिखाता रहता है फिर उसका गटपट कर पानी पीना, चप-चप कर खाना खाना तथा हरिओम की लम्बी डकार के साथ तृप्तिमय संतोष प्राप्त कराना लीना को पसंद नहीं है।" ॥2॥

- -

1- मिले-जुले चेहरे, पृष्ठ संख्या: 149
2- एक और जिंदगी, पृष्ठ संख्या: 313

मेहता और लीना की मित्रता दाम्पत्य जीवन में विस्फोटक सिद्ध होती हैं । समानान्तर कथानक की तथ्यात्मक भूमिका कमलेश्वर कृत "मांस का दरिया" राजेन्द्र यादव कृत-टूटना तथा मन्नू भंडारी कृत "नई नौकरी" आदि कहानियों में संयोजित हुई है ।

3﴾घ﴿ यथार्थ के प्रति बदला हुआ दृष्टिकोण-

मोहन राकेश के जीवन-सूत्रों और उनकी रचनाओं में यथार्थ का दृष्टिकोण बदलते प्रतिमानों में प्रस्फुटित हुआ है । विज्ञान के उदय एवं मनुष्य के भाववाद के स्थान पर तार्किकता की भावना के फलस्वरूप यथार्थ दृष्टिको राकेश ने आत्मसात किया है । यथार्थवाद की उन्होंने नींव तो नहीं डाली लेकिन चिंतन-दृष्टि को नया आयाम दिया । यथार्थ को नाट्य-संदर्भ में समझाते हुए डा० कमलिनी मेहता ने लिखा है -

" चिंतन के क्षेत्र में यथार्थ-बोध पर डार्विन के विकासवाद फ्रायड के मनो-विश्लेषणवाद, पावलोव के व्यवहारवाद तथा मार्क्स के समाजवादी यथार्थवाद का पर्याप्त प्रभाव पड़ा है ।" ﴾1﴿

साहित्य में संवादों का पल्ला पकड़ा गया और यथार्थ को जानने-सूझने की प्रक्रिया पर बल दिया गया । आज के युग के अनुसार मनुष्य के व्यापक हितों तथा जीवन-शक्ति को प्रतिवाद इन्हीं की परिस्थितियों से बनाया गया है ।

- -

1- नाटक और यथार्थवाद, पृष्ठ संख्या:1

अहंकार-जन्य आचरणों तथा नैतिकता-विहीन अनुकरणों का यथार्थवाद पर गहरा प्रभाव जमाए हुए है। यह चिंतन-पद्धति साहित्यकार को युग-जीवन से जुड़ने के लिए बाध्य करती है । जिससे विरासत में मिली थोथी आदर्श-वादिता नकारी जा सके और मानव मूल्यों को यथार्थ-परक बनाया जा सके । यथार्थ चिंतन सूत्र कल्पना और भावना की भित्ति को लाँघकर भौतिक धरातल पर उपस्थित हुए हैं । कहीं-कहीं अतियथार्थ-वादी दर्शन भी इसी दृष्टि से आधुनिक साहित्य में होने लगे हैं ।

मोहन राकेश की कथा-यात्रा में युग-परिवेश के जीवित यथार्थ को अभिव्यक्ति मिली है । कथाकार का उद्देश्य, मात्र पाठकों को अभिभूत करना नहीं अपितु पाठक के समक्ष यथार्थ को प्रस्तुत करना है । यथार्थ दृष्टि कथाकार की वह सार्वभूत दृष्टि है जो दृष्टिकोण है । बदला हुआ अर्थ बदले हुए जीवन और उसके मूल में किस तरह घट रहा है, यथार्थ से ही पता लगता है । डा० लक्ष्मीनारायणलाल ने बदली यथार्थ-दृष्टि को कहानियों में चित्रित होना अनिवार्य बताया है -

" बदले हुए जीवन में यथार्थ के मर्म तक पहुँचना और उसे उद्घाटित करना नई कला का निरंतर लक्ष्य है । "[1]

कहानी कला की उत्कृष्टता की ओर यदि वे सचेत हैं, तो जीवन-सत्य को गहराई से देखने, जीवन के प्रति अपनी निष्ठा व्यक्त करने के प्रति भी सतत्-प्रयत्नशील है । मोहन राकेश ने सच्चाई और प्रमाणिकता के साथ गुजरने की अनुभूतिपरक प्रक्रिया को यथार्थ-दृष्टि दी है । यथार्थ की प्रति-बोधक कहानियां राकेश के हर कहानी-संग्रह में बहुसंख्या में रूपायित है ।

1- आधुनिक हिन्दी कहानी, पृष्ठ संख्या: 111

राकेश के इन शब्दों से यथार्थगत परिवेश की पुष्टि होती है -

" मेरे लिए-नई कहानी की दृष्टि अपने संदर्भों में रहकर उनके अंदर से अपने समय और परिवेश को आंकने की दृष्टि है जो हर बार नए प्रयोग में यथार्थ को उसकी सजीवता में व्यक्त करने की एक नई कोशिश करती है ।" (1)

स्पष्ट है कि कहानी लेखन परिवेश के यथार्थ से पुष्ट और परिवर्तित परिस्थितियों में विकसित नए मूल्यों और मानवीय संदर्भों का लेख है । कहानीकार की गहरी अंतर्दृष्टि चेता-बुद्धि सामाजिक दायित्व के निर्वाह की भावना से कलयित है । " नए बादल " कहानी का प्रारंभ जिस ढंग से होता है उसकी परिणति जिस बिन्दु पर जाकर होती है । वह यथार्थ से कुछ - विशिष्ट अवसरों पर धर्मशाला के चौकीदार आगन्तुकों के साथ जैसा व्यवहार करते हैं तथा कुछ लोगों से पैसे वसूल कर रहने की जगह दे देते है । प्रस्तुत कहानी में यही स्थिति निरूपित की गई है । चौकीदार का कथन है -

" पैसे लेकर तो वह ईमानदारी से कह सकता था तथापि लोग औरों से पहले उसके पास आए थे, इसलिये कमरों पर पहला हक उन्हीं का है । " (2)

" इस कथन से न केवल चौकीदार की मनोवृत्ति स्पष्ट होती है अपितु सार्वजनिक स्थानों पर चलने वाले अनैतिक और भ्रष्टाचार पूर्ण कार्यों पर भी प्रभाव पड़ता है । "परमात्मा का कुत्ता" भी एक ऐसी कहानी है जिसमें लेखक ने अन्याय, अत्याचार शोषण और ऐसे ही अमानुषिक कृत्यों तथा तथ्यों के प्रति अपनी झुंझलाहट व्यक्त की है । "

1- परिवेश, पृष्ठ संख्या: 203
2- नए बादल, पृष्ठ संख्या: 1-2
3- वारिस, परमात्मा का कुत्ता, पृष्ठ संख्या: 92-93

"हक हलाल" राकेश की एक ऐसी कहानी है जिसमें निम्न वर्गीय जीवन में सांस लेती, पैसे के सामने अनेक अत्याचारों को सहती नारी की स्थिति का यथार्थ-अंकन हुआ है ।" ‖1‖

आज की पीढ़ी का यथार्थ परिदृश्य देखने को कहानियों के कथानकों में मिलता है । " फटा हुआ जूता " मोहन राकेश की एक ऐसी ही कहानी है । इस प्रकार राकेश की यथार्थ को निरूपित करने वाली कहानियों में भी परिवार, समाज और राष्ट्र सभी की गतिविधियों व जीवन प्रणालियों को प्रभावी कथ्य में ढालकर प्रस्तुत किया है । उनकी कहानियां प्रेमचंद की परंपरा को समकालीन संदर्भों से विकसित करने वाली कहानियां हैं । ये कहानियां, कहानीकार की यथार्थ-दृष्टि प्रगतिशीलता के सूक्ष्मतारों को स्पर्श करती चित्रित की गई है । डा० लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय का यह कथा ध्यातव्य हैं -

> " वस्तुतः यथार्थ का परिदृश्य प्रस्तुत करने वाली ये कहानियां राकेश की उस छटपटाहट को व्यक्त करती है, जो नया परिवेश और शिल्प पाने के लिए सतत्-प्रयत्नशील है और अंततोगत्वा "एक और जिंदगी" जैसी श्रेष्ठ कहानी तक पहुंच ही जाता है । " ‖2‖

‖ड़‖ साहित्य कथ्य में नये मूल्यों का संप्रेषण -

आधुनातन साहित्य के कथ्य में नए मूल्यों को संप्रेषण लेखक और पाठक के बीच संबंध-सूत्रता प्रतिपाद्य करता है । साहित्य के रूप का परिमार्जन और उसकी सामर्थ्य का विस्तार पिछली कई शताब्दियों में

- -

1- मिले-जुले चेहरे, पृष्ठ संख्या: 63
2- द्वितीय महायुद्धोत्तर हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ संख्या: 179

हुआ है लेकिन आज साहित्यकार को भारतीय जीवन की सामाजिक यथार्थ-भूमि प्राप्त हो गई है जिससे उसमें नए मूल्यों का सम्प्रेषण भरपूर किया । युग-विरासत का संयोग मोहन राकेश के साहित्य के कथ्यात्मक दृष्टि से कहीं अधिक बन पड़ा है । यदि आज की रचनाओं में द्वंद्व का सही परिस्पंदन नहीं झलकता तो आज के यथार्थ का प्रतिनिधित्व नहीं हो पाता । नए मूल्यों के तहत् मनुष्य की वर्चस्वपूर्ण ऊर्जा आज जीवन को नई शक्ति दे रही है । राकेश के साहित्य में वातावरण की संकुलता के बीच मानव की शक्ति का उद्दाम-आवेग आज की झलक को उद्दीप्त किए हुए है । पाठक वर्ग इस झलक का साक्षात्कार कर अनुभव की न्यूनता को और अधिक वृद्धिमय कर लेता है । वस्तुतः मानव जीवन एक इकाई है जिसें प्रभावित करने वाली शक्तियाँ नए मूल्यों की खोज में जुटी हुई है । एक परिचर्चा में भाग लेते हुए मोहन राकेश ने कहा है -

> " जो बात एक-दो या कुछ लोगों के लिए सच हो उसे
> सबके लिए संभाल लेना एक भ्रांति होगी क्योंकि नई
> कहानी की जीवन-धारा के कई लेखक आज भी नई-नई
> दिशाओं और संभावनाओं कीखोज में हैं । " (1)

आधुनिक यथार्थ की पहचान साहित्यगत नए मूल्यों में ही हो सकती है । कहानी का हर समर्थ लेखक अपने ही घेरोंको तोड़कर आगे निकलता है और रचनात्मक जीवन को यथार्थ को पहचान कर पात्रों के चौखटों पर चढ़ा मुलम्मा उतार देना चाहता है । राकेश ने कहानी में निहित पात्रों के सामाजिक संगठन के तथा वैयक्तिक अनुभूतियों के संदर्भ में नए मूल्यों की अन्वेषणा की ।

1- मोहन राकेश : साहित्यिक और सांस्कृतिक दृष्टि, पृष्ठ संख्या: 80

उनकी प्रत्येक कहानी में यथार्थ-जीवन की समूची प्रवृत्ति को देखें तो उसमें रोज-बरोज नए-नए चेहरे आ रहे है और खोज भरी दृष्टि से जिंदगी के नए-नए प्रश्नों को सामने लाने की कोशिश कर रहे हैं । जिंदगी का परिवर्तनशील भागता हुआ दृष्टिकोण "उलझते धागे" कहानी में इतना गहरा और युगबोधी हो गया है कि आज का व्यक्ति प्रत्येक स्थिति में जमाने के साथ भागता नजर आ रहा है -

" नीचे वाले सिनेमा के खड्ड से एक औरत और मर्द भागते हुए आ रहे हैं । औरत बहुत भरी-भरकम है और छोटा सा रेशमी छाता लिये आगे-आगे आ रही है मर्द भी मोटा और नाटा है और तेज भागकर उसके बराबर आने की कोशिश कर रहा है ।

कुछ लड़कियाँ दुपट्टों में सिर और मुँह लपेटे और हाथों से अपनी सलवार उठाए नक्कड मंडी की तरफ भागी जा रही है ।

मनीजर साहब को शायद नशे की टोह लग गई है । इस-समय एड़ी लगाकर भागते चलना ही ठीक है भागते पैर अपने आप ठीक हो जाएगा ।" (1)

मानव मूल्यों का यह नया सम्प्रेषण निरन्तर गतिशील धारा के रूप में विकसित होता जा रहा है ।

- -

1- नए बादल उलझते धागे, पृष्ठ संख्या: 131-136

आधुनिकता के बोध और उसकी कामना के नए मूल्यों का समाहार आज के साहित्य में होता जा रहा है । यथार्थ में अंतर्भूत भविष्य संकेत जीवन सापेक्ष मूल्यों के प्रति नई कसौटी पैदा करता है । इस दृष्टि से आज के यथार्थ को नए मूल्यों में संप्रेषित किया जा सकता है । मानव का मानव से परिचय, मूल्यों की प्रतिबद्धता को स्वीकार करता है ।

मोहन राकेश की गहरी अंतर्दृष्टि नए मूल्यों के साथ तात्कालिक प्रयोगवादिता से जुड़ गई है । उन्होंने युग की बात को दावेदारी से स्वीकार किया है तथा कहानी के कथ्य में बदलते नए-मूल्यों को स्थान दिया है । जहां तक विश्वास के मूल प्रश्नों का संबंध है वहां तक सम सामाजिक जीवन संदर्भों से जुड़ा हुआ नयाभाव-बोध बदलते टूटते प्रयोगों में नवीनीकृत हुआ है । यथार्थ-धर्मिता अग्रगामी होकर मोहन-राकेश की कहानियों में यंत्र युगीन सामाजिकता को ओढ़े हुए है । आज बदलते हुए संबंधों के संतुलन का स्थान नयी-मूल्यवादी भाव संप्रेषणीयता पर ही टिक पाता है । मानवीय संक्रांति में यांत्रिकता-जन्य आर्थिक राजनीतिक परिवेश नए मूल्यों को उद्-गीरित करने में समर्थ है ।

3(च) साहित्य शिल्प में नये मूल्यों का संप्रेषण-

जीवन, मनुष्य की अनगिनत अनुभूतियों को जन्म के प्रारंभिक क्षण से लेकर मृत्यु पर्यन्त एक संश्लिष्ट इकाई बना रहता है और तभी संश्लिष्ट मनोभाव, शिल्प की अभिव्यंजना शक्ति से साहित्य में संवेदनशील बनते हैं । समकालीन परिस्थितियों में जीवन के यथार्थ का प्रतिबिम्बन शिल्प की अर्थवत्ता पर निर्भर हो गया है । नए-पुराने शिल्प-संबंधों को निरूपित करने वाला आधुनिक साहित्य परिवेश से संबद्ध व्यक्ति को उसके समस्त अंतर्विरोधों और असंगतियों के साथ एक विशिष्ट प्रकार का आकार प्राप्त कर रहा है।

सूक्ष्म मानव-संबंधों को आज के साहित्य-कथ्य में नए शिल्प की बढ़ती हुई माँग दोहराई जा रही है । लेखक की रचना-प्रक्रिया, शिल्प-संयोजना से इतनी जुड़ी हुई है कि हर नया वर्ग हर साहित्यकार से परिवेश के अनुकूल विलक्षण-शिल्प शक्तिमत्ता कीमाँग करता हुआ अभिनव अर्थों को आत्मसात कर लेना चाहता है ।

लेखक की भाषा उसके और पाठक के बीच घनिष्ठता के तारतम्य को न जोड़े तो रचना का उद्देश्य विफल हो जाता है । आज की कहानियों में इस दृष्टि से भाषा की प्राण-शक्ति को मोहन राकेश ने पहचाना है । कहानी में जीवन के विराट् को प्रदर्शित करने के लिए भाषा सहायक माध्यम बनी है । कहानी, युग की प्राण-शक्ति को व्यक्त करने का भाषा आज सशक्त माध्यम है। डा० नामवर सिंह ने कथा-साहित्य में भाषा की विविध रूपता पर विचार करते हुए लिखा है -

> " भाषा इधर की कहानियों की काफी बदली है । यह भी कह सकते हैं कि मंजी है यहाँ तक किहिन्दी गद्य का अत्यन्त निखरा हुआ रूप आज की कहानी में ही सबसे अधिक मिलता है । " (1)

भाषा की पारदर्शिता इतनी प्रबल है कि आज का परिवेश उसमें हू-ब-हू अभिव्यंजित होकर अनुभूतियों को तो समेट ही लेता है । साथ ही व्यक्ति परिस्थितियों के वैज्ञानिक विश्लेषण की संघटित उद्भावना को सपच बना लेता है ।

- -

1- कहानी: नई कहानी, पृष्ठ संख्या: 23

इस स्थिति पर विचार करते हुए मोहन राकेश ने भाषा के ऐतिहासिक विवरण को समकालीन कथाकारों के परिप्रेक्ष्य में दिया है -

" उन्होंने भाषा की संभावनाओं को दिए जा रहे जीवन के अन्दर से ही खोजने का प्रयत्न किया परन्तु एक तरह का पवित्रतावाद क्योंकि उनके भी संसार में था इसलिए भाषा के ऐतिहासिक रूप का आग्रह करने पर भी अत्यधिक आंचलिक और अत्याधिक विदेशी शब्दों का प्रयोग के उदाहरण पूर्वक नहीं कर सकते । इससे उनकी भाषा संबंधी खोज भी उसी आदर्शवादी ढांचे में ढलकर रह गई जिसमें उनके दूसरे विश्वास ढले थे । जीवन दृष्टि की तरह उनकी भाषा भी मध्यमार्गी रही आंचलिक क्षेत्र में मध्य-मार्ग से बिदा ली । रेणु ने और व्यापक क्षेत्र में नई पीढ़ी के अन्य कथाकारों ने । " (1)

मोहन राकेश ने शिल्प में भाषिक-संरचना संबधी नए-नए प्रयोग किए कि उन्होंने कथा साहित्य में अन्य-भाषाओं के प्रभाव को भी आत्मसात किया तथा अपने परिवेश और अंतरंग होने के साथ-साथ शब्दों को एक कृत्रिम अर्थवत्ता देने के बजाए उन्होंने भाषा की ऐतिहासिक अर्थवत्ता की खोज की और - अनुभूति की विशिष्टता से भाषा को एक नया संस्कार दिया । "परमात्मा का कुत्ता" कहानी में भाषाके माध्यम से परिवेश की जीवन्तता और अंतरंगता का चित्रण जिस भाषा में किया गया है, उसमें गूढ़ता तथा सशक्तता, अर्थवत्ता लेकर उद्भावित हुई है -

- -

1- बकलम खुद, पृष्ठ संख्या: 75

" ... अंदर हॉल में फाइलें धीरे-धीरे हिल रही थी दो चार बाबू बीच की मेज के पास चाय पी रहे थे । उनमें से एक दफ्तरी कागज पर लिखी हुई अपनी ताजा गजल यारों को सुना रहा था और यार इस विश्वास के साथ सुन रहे थे कि जरूर उसने " शमा या बीसवीं सदी के किसी पुराने अंक से चुराई है ।

एक फरमाइशी कहकहा लगा जिसे शीशी की आवाजों ने बीच में ही दबा लिया । कहकहे पर लगाई गई ब्रेक का मतलब था कि कमिश्नर साहब अपने कमरे में तशरीफ ले आए हैं । " (1)

भाषा की नैपुण्य शक्ति ने परिवेश की तसवीर उजागर करते हुए यह भी बता दिया है कि सरकारी कागजों का क्या उपयोग किया जा रहा है । दफ्तर के समय में लिपिकों का गजल सुनना, इकट्ठे होकर चाय पीना, कहकहे लगाना, उनकी कमजोरी और लापरवाही का सूचक है । मोहन राकेश की उक्त पंक्तियों में आए हुए उर्दू के शब्द जैसे यार फरमाइशी कहकहा, दफ्तरी कागज तशरीफ आदि वातावरण में पूर्ण रूपेण खप जाते हैं और भाषा का प्रभाव बना रहता है । राकेश की कहानियों की भाषा में गूढ़-सांकेतिकता है । साथ ही भाषा का वह गुम्फन है जिसे शरीर की अंग-प्रत्यंग पार्थिवता पर पड़ता है जैसे आकाश में बादल घुमड़ते हैं और वर्षा सृष्टि पर होती है ।

1- जानवर और जानवर, पृष्ठ संख्या: 83-85

शरीर व मस्तिष्क का आबद्ध न एक ऐसे सूक्ष्म-सूत्र से है जिससे एक का भी स्पर्श होने पर एक साथ दोनों के ही तार झंकृत होने लगते हैं तथा भाषा वैभव के परिपल्लवन में मुखरित होने लगते हैं । मोहन राकेश ने इसी अनुभूति से भाषा-शिल्प को तराशने एवं बदलने का कार्य किया है ।

भाषा विचारों का परिधान है तथा भावों की संवाहिका है । इस दृष्टि से आधुनिक उपन्यासों में भाषा का निर्वाह बड़ी उदारता के साथ किया गया है । कृत्रिम पात्रों को स्वाभाविक बनाने का कार्य भाषा ही करती है । कतिपय उपन्यास समीक्षकों का मत रहा है कि उपन्यास में स्वाभाविकता लाने के लिए पात्रानुकूल भाषा होनी चाहिए मोहन राकेश के समस्त उपन्यास - व्यवहारिक भाषा में लिखे गए हैं । समकालीन जीवन के विविध-आयामों को अभिव्यक्त करने के लिए जिस सशक्त-भाषा की आवश्यकता थी उसको मोहन-राकेश ने सामर्थ्य एवं प्रेषणीयता के अनुसार अपने उपन्यासों में अपनाया है । डा० सुषमा अग्रवाल का यह कथन भाषा के उन चरम बिन्दुओं को स्पर्श करता है जिनमें भाषा की काठिन्य और सरलता दोनों ही आरोह-अवरोह की भांति प्रयोगशील बनी रहें । उनका कथन है -

" संबंधों की कटुता एवं वास्तविकता को शिथिल करने में कहीं-कहीं बहुत सख्त भी हो गई हैं । उसमें यथार्थ के बिम्ब झांकते हैं । " (1)

- -

1- मोहन राकेश व्यक्तित्व और कृतित्व, पृष्ठ संख्या: 40

-:: चतुर्थ अध्याय -::

:- मोहन राकेश के उपन्यास साहित्य में समसामयिक चेतना -:

4- मोहन राकेश के उपन्यास साहित्य में चेतना -

(क) आधुनिक परिवेश और मूल्य हीनता की स्थिति-

नई-पीढ़ी के मानस को उपन्यासों में मोहन राकेश ने शब्द-बद्ध किया है । उन्होंने अपने समस्त उपन्यासों में आज के समाज की बढ़ती हुई समस्याओं-नारी-समस्याओं, आर्थिक विषमताओं की चक्की में पिसे जा रहे मानव की समस्याओं को अत्यन्त ही सरस और सुलझे ढंग से प्रस्तुत किया है जहां युग की प्राचीन मान्यताएं तीव्रता से बदल रही थी वहां मोहन राकेश ने आधुनिक परिवेश की झलक को उपन्यास साहित्य में उतारा उन्होंने उपन्यास कथ्य में नवयुग की संस्कृति, सभ्यता सांस्कृतिक चेतना आदि का यथार्थ एवं सुंदर चित्रण प्रस्तुत किया है । इसमें मनुष्य की घुटन छटपटाहट तथा अंर्तद्वंद्व का चित्रण सटीक बन पड़ा है । आधुनिकता-बोध के बदलते-प्रतिमान मध्य-वर्गीय चेतना को ईमानदारी से प्रस्तुत करने में जुटे हैं ।

आधुनिक-परिवेश में बदली हुई स्थितियों के बीच मूल्यहीनता का नया-प्रश्न मोहन राकेश की उपन्यास-कला में मौलिकता के साथ जुड़ गया है । "अन्तराल" उपन्यास की समग्र-कथा श्यामा के मानसिक उहापोह की कथा है । वह पति से उदारता और कोमलता की अपेक्षा रखती है, मिलता है- मूल्य-हीनता का प्रतिवाद, वितृष्णा, क्रूरता तथा निरपेक्ष तटस्थता, उसका समस्त मनो-व्यापार इन्हीं भूमियों से संचालित होता है । श्यामा और कुमार दोनों अपनी ही अपेक्षा का स्वरूप नहीं जानते । वे स्वीकृति और अस्वीकृति दो ही चरम-स्थितियों को पहचानते हैं । बीच की ऊर्जर वाली स्थिति का परिचय उन्हें नहीं है । एहसास की यह क्षीणता चाहने और न चाहने की स्थिति को व्यंजित करती है । वे वर्जनाओं को तोड़ने की इच्छा रखते हैं ।

मानसिक-ग्रंथि की उत्पत्ति का निराकरण चाहते हैं तथा आधुनिक परिवेश में संस्कार-जन्य सामाजिक वर्जनाओं को तोड़कर नए-मूल्यों की स्थापना करना चाहते हैं। श्यामा की चेतना में मानसिक ग्रंथि बनती है। श्यामा का मन प्रेम की उदात्ततम् अनुभूतियों की प्राप्ति के लिये लालायित है, वह चेतना को क्रीत कर देने वाले बड़े उच्छृंखल झरनों वाली पहाड़ियों जैसा रौब चाहती है। (1)

मुख्यतः राकेश कृत उपन्यासों में दुरूहता और जटिलता का बाहुल्य है। इसका मूल कारण कथानक में आधुनिकता-बोध है आधुनिक मानव-जीवन के संबंधों की कहानी कितनी गहरी हो सकती है और उस पर देशगत सांस्कृतिक मूल्यों का प्रभाव कितना है' इस क्रांतिदर्शिता को ऐतिहासिक सन्दर्भ में उपन्यासकार ने व्यक्त किया है। मानव जीवन जिस भाव को छू रहा है, वह आधुनिकता का ही आयाम है।

" अन्तराल" की भांति ही "अंधेरे बंद कमरे" में मोहन राकेश ने महानगर दिल्ली में स्त्री-पुरुषों और आदमी-आदमी के बीच बनने-बिगड़ने वाले सामाजिक एवं व्यैयक्तिक संबंधों की कहानी रूपायित की है। परम्परागत तथा भावुकतापूर्ण जीवन के मूल्य प्रस्तुत उपन्यास में प्रायः लुप्त हो गए हैं। महानगरों का जीवन एकदम कृत्रिमता, औपचारिकता आडम्बर की दौड़धूप में रिक्तता का अजायबघर बन गया है। आधुनिकता के परिवेश में मानवीय नग्न-संबंधों में मूल्यहीनता के पथ पर लाकर खड़ा कर दिया है।

1- अन्तराल, पृष्ठ संख्या: 98

" अँधेरे बंद कमरे " की नीलिमा, आत्म निर्भरता के प्रकोष्ठ में जीवन के बोध को तटस्थ बनाती हुई कहती है -

> " मैं तुम्हे सब कुछ सच बता देना चाहती हूँ । मैने सोचा था कि क्यों न मैं कोई ऐसा उपाय ढूंढूं जिससे मुझे किसी भी रूप में तुम्हारे ऊपर निर्भर न रहना पड़े । न धन के लिए, न आश्रय के लि" और न ही --------- न ही भावना के लिए ।" (1)

उपन्यासकार ने मध्यवर्गीय जीवन-मूल्यों को पाठक के सामने खोल कर रख दिया है । इन वर्गगत लोगों का ध्यान प्रमुखतः यौन-संबधों की चर्चा करना तथा प्रति-विरोधी नर-नारी के स्थूल-प्रणय का आकर्षण बनना, ध्येय रह गया है । जिदंगी का टूटा हुआ विसंगत रूप एक खण्डित स्वीकृति है, जो लगातार भटकती तथा छटपटाता रहता है । नित्य नैमित्तिक संवेदन-शीलता और पर्यावरण की कचोटन का उपन्यासकार ने मूल्यहीनता की स्थिति में निरूपण करते हुए लिखा है -

> " एक तरफ बदबू से सिर फटने को आ रहा था और दूसरी तरफ अंतड़ियों में भूख की कुलबुलाहट महसूस होने लगी थी । चलते समय रास्ते की जो योजना दिमाग में थी वह सब गड़बड़ा गई थी । खाना उतना ही गन्दा और उबकाने वाला था जितना रोज होता था ।" (2)

- -

1- " अँधेरे बंद कमरे, पृष्ठ संख्या: 154

2- ""न आने वाला कल " , पृष्ठ संख्या: 170

सामाजिक वस्तुनिष्ठ स्तरीकरण की मूल्यहीनता अनैतिक अभिवृत्ति के दायरे में आज भलीभांति पनप चुकी है । उपन्यासों में उल्लिखित-पात्रों के अवकाशकारी व्यक्तियों से संबंध-निर्वाह आज की गतिमान अनैतिकता का प्रतिपादन करने में इस तरह जुटे हैं मानो उन्होंने जीवन के क्षणों के पूर्ण-रूपेण स्तरीकरण कर लिया हो । युग में परिवेश ने मध्यम-वर्ग की सांस्कृतिक मूल्य-हीनता को पर्याप्त झकझोरा है । यह झंकृति कोई आकस्मिक घटना नहीं है, बल्कि इस युग में सांस्कृतिक मूल्यों पर प्रश्नचिन्ह लगाने वाली अंतर्द्वंद्व-पूर्ण अनिश्चितता की स्थिति से ओतप्रोत है । इसकी वैज्ञानिक उपयोगितावादी दृष्टि भी अवमूल्यन के कारण बनी । डारविन, फ्रायड, मार्क्स की गवेषणाओं के प्रचार के कारण मान्य कथ्यात्मक मूल्यों के प्रति संदेह उत्पन्न होने लगा । परिणाम-स्वरूप जीवन-यापन कला-आधुनिकता की बोधगम्यता को लेकर आत्म-निर्भरता के कगार पर इस तरह मुखापेक्षी बन गई, जिसे स्वानुभूत-शून्य होकर परानुभूति के लिये मुखौटो का आवरण अवधारित करना पड़ा ।

(ख) पारिवारिक और सामाजिक मूल्यों में बदलाव -

मोहन राकेश कृत उपन्यासों में पारिवारिक सामाजिक जीवन के यथार्थ-संबंधी समस्याओं और अन्यान्य विषमताओं को उद्घाटित किया गया है । व्यक्तित्व के बहुविध प्रस्फुटन का रूप परिवार तथा समाज की धरा ही होता है । इस समाजवाद यथार्थवाद की अभिव्यक्ति के उपन्यासों में मुखर हुई है । सामाजिक संबंधों का ताना-बाना परिवार की इकाईयों पर बुना जाता है । एक परिवार के सदस्यों का परस्पर संबंध और शेष परिवारों से संबंध का अध्ययन करें तो पारिवारिक और सामाजिक मूल्यों का अध्ययन हो जाता है

1- मोहन राकेश : साहित्यिक और सांस्कृतिक दृष्टि, पृष्ठ संख्या: 84

मध्य-वर्गीय जीवन में दाम्पत्य जीवन एक चुनौती बनकर, मूल्यवादिता की धरोहर बनकर खड़ा है । परिवेशागत वातावरण का प्रभाव युवक और युवतियों को बदलते मानों में ढकेल देता है । पारस्परिक आकांक्षाओं की पूरकता की आकांक्षा लेकर दाम्पत्य-जीवन "पर में "स्व" की खोज करता हुआ अपने "ईगो" की तुष्टि चाहता है । भौतिकता के आधार पर टिके संबंध पारस्परिक समझ को खो बैठते हैं -

> " देव का न उसके अनकिये को लेकर शिकायत होती थी, न उसके किए को लेकर उत्साह । वह जैसे एक चलती-फिरती बेजान चीज थी, जिससे कुछ कहने सुनने का सवाल ही पैदा नहीं होता चेष्टा इतनी ही रहती थी कि सब कुछ इस तरह होता जाए ।" ॥1॥

मानव-जीवन के अंतर्द्वंद्वी चित्रण के उपर्युक्त पंक्तियों में "अंतराल" उपन्यास में जिस प्रकार परिणित किया गया है । वे घुटन, तनाव रिक्तता के बिम्बात्मक प्रतीक हैं । देव और श्यामा पात्रों के अंतस्तल की ऊबती हुई जिंदगी की किस तरह बेमानी अनकही रूपरेखा है , सामाजिक तथा पारिवारिक मूल्यहीनता और गतिशीलता का प्रभावांकन ही, इसे कहा जा सकता है । मोहन राकेश ने आधुनिक समाज में टिके संबंधों का सूक्ष्म-अतिसूक्ष्म विश्लेषण किया है । आधुनिक भारतीय समाज में स्त्री स्वतंत्र-चेता होकर संबंधों समानान्तर विचार-विनिमय तथा अधिकारी विनिमय का, जीवन-यापन विनिमय, का और आचरण विनिमय का अपेक्षित स्वरूप अनिवार्य मानती है ।

1- अन्तराज, पृष्ठ संख्या: 147

"अंधेरे बंद कमरे" में इस तरह के जीवन की उपालम्भ-पूर्ण विचित्रता उपन्यासकार ने निरूपित की -

" मैं कहती हूँ कि वह गया है तो अब उसे कुछ दिन अकेले रहना चाहिए वह बहुत दिनों से इस तरह की जिंदगी के लिए बैचेन था । " ॥1॥

आधुनिक काल में व्यक्तिवाद का विकास परिवार के झरोखें से निकल कर बड़े प्रबल वेग से हो रहा है । भौतिक वासनामय संबंधों के अतिरिक्त स्त्री-पुरूष के कुछ संबंध मनो-वैज्ञानिकता के आधार पर व्याख्यायित है, जिनमें अलगाव तथा प्रतिबद्धता की स्थिति क्षण-बोधीय कल्पना के साथ जुड़ी रहती है । " न आने वाला कल " उपन्यास का यह अंश इस द्रष्टि से महत्वपूर्ण है ।

" तुम भी जानते हो कि यह जिंदगी तुम्हें रास नहीं आती । तुम जिस तरह की जिंदगी के आदी रहे हो तुम्हें फिर वही जिंदगी जीने को मिल जाएगी ।" ॥2॥

आधुनिक युग में परिवार की व्यवस्था के विरुद्ध क्रांति एवं विद्रोह के स्वर सुनाई देते हैं । इस विद्रोह ने चतुर्दिक परिवेश को खोखला और अनास्थावादी बना दिया है । जीवन को नंगे रूप में देखने के कारण पारिवारिक मूल्यों के प्रति वितृष्णा हो गई है ।

- -

1-"अंधेरे बंद कमरे, पृष्ठ संख्या: 103

2- "न आने वालाकल " पृष्ठ संख्या:19

§ग§ सम्बन्ध हीनता तथा सम्बन्धों के नये आयाम-

§ग§ जीवन के प्रति यह दृष्टिकोण यांत्रिक सभ्यता के साथ जुड़ा हुआ है । परिणाम-स्वरूप पारिवारिक संघठन तथा विघटन, मानवीय दुर्बलताओं के साथ इस प्रकार अव्यवस्थित हो गया है कि पति-पत्नी के बीच दुस्ह-रेखाएं प्रणय-संबंध को खोखला बनाने में अग्रसर हैं । पारस्परिक विरुद्धता ने अराजक मूल्यता के द्वारा नर-नारी में कुंठा और विकृतियों को जन्म दिया है । संबंधों की बदलती स्थिति स्वतंत्र व्यक्तित्व की निर्मित आज के समाज के संबंधों का प्रमुख अभीष्ट है । उत्तर-दायित्व विहीनता सामाजिक क्षेत्र में इस तरह अवतरित हुई है । आर्थिक धरातल पर कशमकश पति-पत्नी के सुख को विच्छिन्न बनाने में सहायक हो रहा है । "अंतराल" उपन्यास में उमड़ते हृदय के भावों को श्यामा की जिंदगी से इस-तरह उद्भावित करके देखा गया है कि वह मात्र प्रवंचनामय होकर संबंध विहीनता की स्थिति को प्राप्त कर ले । उसका कथन है -

> " उन्हें मेरे सुख-दु:ख से कोई मतलब नहीं है । मतलब है तो सिर्फ उन पैसों से जो हर महीने में उन्हें भेजती हूं पैसे वक्त से पहुंच जाए तो महीने के बाकी उन्तीस दिन शायद उन्हें मेरी याद भी नहीं आती ।" §1§

भगवती चरण वर्मा कृत "तीन-वर्ष" उपन्यास का नारी-चैतन्य आर्थिक अवलंबन को लेकर मूल्य सृष्टि का अभिनव प्रारम्भ बना है । इस व्यवस्था में आर्थिक खाई बढ़ती जा रही है और धन का महत्व संबंधों से कहीं अधिक है । कहा गया है -

> " दुनिया में प्रेम कहा है' जो कुछ है वह पैसा है पैसा सब-कुछ खरीद सकता है ... मनुष्य की आत्मा तक रुपये की शक्ति है । " §2§

1- अंतराल, पृष्ठ संख्या: 73

2- तीन वर्ष: साहित्य संदेश उपन्यास अंक, पृष्ठ संख्या: 122

पति-पत्नी की संबंध-विहीनता में नारी को नए सामाजिक परिवेश में लाकर खड़ा कर दिया । आधुनिक चेतना संपन्न नारियाँ तलाक और स्वावलंबन और तलाक को अनिवार्य समझती हैं । वैभवपूर्ण जीवन-व्यतीत करने की लालसा इन्हें तीसरे व्यक्तित्व के साथ जोड़ देती है । स्वच्छंद प्रेम नारी-स्वातंत्र का मूल आधार बन गया है ।

" पति तो पारिवारिक जीवन के लिए आवश्यक
है, प्रेम के लिए नहीं । " (1)

संबंध- हीनता की स्थिति इंसानियत के दायरे को कम करती जा रही है । जीवन-मूल्या बदलते प्रतिमानों में इस तरह जुड़ गए हैं कि आदर्श- केवल खोखले और अर्थहीन जान पड़ते हैं । जीवन-मूल्यों की बदलती हुई स्थिति तथा आदर्श की अर्थवत्ता पर प्रकाश डालते हुए नीलिमा का यह कथन विवेच्य है-

" क्या तुम समझते हो कि जीवन में कोई ऐसा भी मूल्य
है जिस पर आदमी अपने मन को स्थिर रख सके ....
कोई भी ऐसी चीज है जिसका दामन पकड़कर आदमी
खड़ा रह सके । " (2)

मूल्यहीनता की यह स्थिति यथार्थ की अर्थवत्ता पर जोर देकर यह कह देना चाहती है कि इन्सान के सबंध इन्सान से कोरे शब्द हैं । इनका कभी अर्थ रहा होगा लेकिन अब नहीं । आधुनिक परिवेश में आज की संबंध विहीनता निजी संबंधों को नकारा करती है पति-पत्नी जैसे संबंध, रूढ़ि-ग्रसिता अथवा मानसिक रूढ़ता के कारण भयाक्रांत बन जाते हैं और जिंदगी बोझिल लगने लगती है ।

1- "संघर्ष: विश्वम्भरनाथ शर्मा कौशिक, पृष्ठ संख्या: 146

2- "अंधेरे बंद कमरे, पृष्ठ संख्या: 284

कोहली पात्र की मनःस्थिति का उपन्यासकार ने " न आने वाला कल" उपन्यास से संबंध विहीनता का निरूपण किया है -

" तुम्हारा क्या खयाल है ... कोहली को कैसा लगा होगा अपनी बीबी की मौत से' बीस साल वह उसके साथ रहा है । ठीक है पिछले दो तीन साल से वह उसके लिए बोझ बन गई थी, फिर भी ... । " ‌(1)

पुरुष की दुविधा और अंर्तविरोधी सामाजिक मूल्यों से अब तक उपन्यास में नारी का स्वतंत्र व्यक्तित्व उभरकर नहीं आ सका है । वह कहीं न कहीं "अधूरी" रहकर पुरुष सम्पत्ति का प्रश्न-चिन्ह बनती है तथा संबंध-विहीनता की स्थिति को प्राप्त कर बरबस नए संबंधों के आयाम ढूंढती है ।

(घ) यथार्थ के प्रति बदला हुआ दृष्टिकोण -

स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी-उपन्यास, पूर्व उपन्यासों की तरह किसी व्यक्ति को किसी भी परिवेश और समय में रखकर चित्रित नहीं करते अपितु जीवन के वैयक्तिक और सामाजिक धरातल को परखकर यथार्थ-चित्र प्रस्तुत करते हैं । आदमी की जीने वाली जिंदगी हूबहू परिचित कराने का यथार्थ है । वातावरण स्थिति-परिस्थिति पूर्ण जीवन की तलाश, माहौल का यथार्थ बनकर यथा-तथ्य परिवेशात्मक बन गया था । मोहन राकेश ने आधुनिक उपन्यास-साहित्य की विशिष्ट उपलब्धियों को यथार्थता प्रदान की है ।

1- न आने वाला कल, पृष्ठ संख्या: 47

" अंधेरे बंद कमरे " के माध्यम से महानगरीय बोध का कटुरिक्त चित्रण प्रस्तुत हुआ है । यथार्थ की अनुभूति का क्षेत्र इतना संकीर्ण हो सकता है। इस उपन्यास में स्पष्टवादिता के साथ स्थापित किया गया है -

> " और फिर हरबंस से हाथ मिलाते हुए उसने कहा तुम सचमुच बहुत भाग्यवान आदमी थे जो इतनी अच्छी कलाकार के पति हो । मुझे तुमसे ईर्ष्या होती है, मगर तुम्हें शायद अपनीपत्नी से ईर्ष्या होती है । " ४1४

स्त्री-पुरूष के संबंधों में यथार्थ परक दृष्टि का अवगाहन मोहन राकेश ने अति सूक्ष्म दृष्टि से किया । व्याप्त विषमता परक परिस्थितियां स्त्री-पुरूष संबंधों को बिखराव पूर्ण बना देती है । यथार्थ का प्रकटीकरण मनोवैज्ञानिक शैली से कथ्य में राकेश ने पिरो ही दिया है । राकेश नित्य-प्रति घटित दुरूह-समस्याओं के ख्यातिप्रद प्रणेता उपन्यासकार है ।

"अन्तराल" उपन्यास मोहन राकेश द्वारा आधुनिक कथानक में लिखित सफल उपन्यास यथार्थ-परकता का एक सफल आयोजन है । शारीरिक और मानसिक श्रम परिहारिता इस उपन्यास का मेरू है । यथार्थ के घेरे में अस्तित्ववादी मूल-चेतना इसका पृष्ठ चिन्ह है । अनुभूतियों का सरलता से आख्यानक बना देना, उपन्यासकार की कथ्यात्मक रूचि का द्योतक है । मनोवैज्ञानिकता की छाया में छितराया व्यक्तित्व यथार्थ-अर्थवत्ता का प्रति-पादन करता है । परिवेशात्मक बाह्य और अंतः सूत्र गहराइयों में डूबकर किस तरह नैराश्य और अवसादमय हो जाती है ।

1- अंधेरे बंद कमरे, पृष्ठ संख्या: 266

इसका चित्रण बाह्य-प्रकृति तथा मानवीय अंतः प्रकृति के समानान्तर रूपों में इस तरह देखा गया -

" एक बादल अंदर घिरा था, उसी तरह छितराया-
छितराया बादलअंदर की शाम बाहर की शाम से
व्याप्त गहरी और उदास थी ... एक और अनुभूति
भी थी रोयों से गुजरते ब्लेड जैसी वह किसीभी प्रयत्न
से उस अनुभूति से अपने को नहीं अलगा सकती है । " (1)

नारी की असहाय स्थिति और विद्रूप-परक विचारण खंड-खंड में बिखराव को उद्भाषित करती है । अकेलापन ढूंढने की कोशिश में भी भीड़ में खो जाता है और अव्यक्त सी अवधारणाएं अंतः बाह्य को एकाकार कर देती है ।

" न आने वाला कल" स्कूली जिंदगी पर आधारित होकर मध्य वर्गीय-चेतना को यथार्थ भूमि पर लाकर खड़ा कर देता है । कथानक की जटिलता संगतियों और विसंगतियों का झुकाव उलझे संदर्भों की गुह्य-गुफा की भांति दृष्टि से ओझल हो जाता है । स्मृतियों की तन्द्रा विचाराधारा में टूटती है । उत्सुकता की पराकाष्ठा मूल्यहीनता में विसर्जित होती है । व्यक्तित्व मोह-भंग में धूल-धूसरित होकर अनागत भविष्य की ओर गढ़ी दृष्टि से देखने की ललक रखते हैं । इस संदर्भों के तहत् उलझी मानसिकता को उपन्यासकार ने सूक्ष्म ढंग से स्पष्ट किया है ।

" क्या दूसरी बार दूसरे आदमी के साथ उसके
जिंदगी शुरू करने के पीछे यही भावना नहीं थी
कि शायद इस बार पहले से ज्यादा अपनी सी जिदंगी
जी पाएगी । " (2)

1- अंतराल, पृष्ठ संख्या: 93
2- न आने वाला कल, पृष्ठ संख्या: 109

जैसे दीवार का दीवार से अंतराल संबंधों की छाया बनाती है, उसी प्रकार जीवन जीने की मानसिक स्थिति विस्तार का अनुभव करने में प्रश्नचिन्ह लगा देती है । स्त्री-पात्रों के विचार-परक दृष्टि को लेखक ने एक ठोस धरातल देना चाहा था । लेकिन यथार्थ का संबल न मिलने पर वह झूले से झोंका खाकर जिंदगी के बहुविध छोरों से प्रतिबद्ध बना रहा युग की गतिशीलता के अनुसार मानव-जीवन का सही चित्रव्यक्ति के सामाजिक रूप में मिलता है । व्यक्ति का पूर्ण चित्र यथार्थवादी समाज के ढांचे पर ही संवहन होता है । मानवीय दुर्निवार आकर्षक व्यक्तित्व की गहराई में इस तरह निमग्न हो जाता है जिसका आह्वान यथार्थ से होकर बदलते अति-यथार्थवादी मनुष्य से सम्बद्ध है ।

(ङ) साहित्य कथ्य में नये मूल्यों का संप्रेषण -

मोहन राकेश ने आधुनिक समस्याओं को लेकर नए भावबोधों के साथ लेखन किया है । उन्होंने उपन्यास साहित्य में महानगरीय जीवनमें भर आए आदमी की निराशा, कुंठा और निरर्थकता-बोध को उजागर किया है । दिल्ली में जिस कक्ष में बैठकर हरबंस आपबीती मधुसूदन को सुनाता है उस कमरे की सज्जा-सामग्री, कृत्रिम होने और उनके पारस्परिक संबंधों के बिगड़े होने की नए मूल्यों में व्यंजना करती है । परस्पर निर्वाह के लिए जिस सामान्य और तनाव रहित स्थिति की आवश्यकता हैं। नीलिमा और हरबंस के संबंधों की स्थिति वैसी नहीं है । कमरे के सामान की अतिरिक्तता से एक प्रकार की घुटन और अवरोध की अनुभूति का एहसास होता है ।"(1)

1- अंधेरे बंद कमरे, पृष्ठ संख्या: 186

हरबंस और नीलिमा का जीवन भी अतिरिक्त महात्वाकांक्षाओं से आक्रांत हो उठा है । उनके आत्म-विक्षोभ, निराशा, कुंठा का प्रस्तुत पर्यावारण अभिव्यंजित हुआ है । मूल-कथ्य से सम्पृक्त यह जीवन-मूल्य वैयक्तिक उद् भावनाओं का उगल देना चाहता है । इसी प्रकार उपन्यासकार ने अन्य पात्रों में मूल्यों की परावृत्ति का ध्यान किया है । एक उदाहरण है -

> " सुषमा को फोन करते-करते सहसा रूकना और बस्ती हर फूल की ओर चल देना मधुसूदन का पुराने जीवन मूल्यों की पुनरा वृत्ति है । " [1]

परम्पराओं और पुरातन जीवन-स्थितियों की ओर जीवन मूल्यों का लौटना अस्वाभाविक है क्योंकि वर्तमान-स्थितियों का पुरातन से कोई लगाव नहीं है । उससे वे कट चुकी है ।

साहित्य के नए मूल्य सामाजिक जीवन घर और कुटुम्ब तक सीमित न रहकर राजनीतिक प्रक्रियाओं का निकष बन गए हैं । सामाजिक चेतना औरप्रक्रियाओं को अब स्वतंत्र इकाई न मानकर अनेक संबंध सूत्रों और मूल-प्रवृत्तियों की खोज की जाने लगी । नई परिस्थितियों और परिवर्तनों के प्रकाश में पुराने समाधान फीके पड़ने लगे । यहां तक कि समझौते का स्थान समाप्त हो गया और पुराने विश्वासों की नींव ढह गई । पिछले युग से अधिक गहरी, व्यापक, मूलनिष्ठ क्रांति दर्शनी रेखाएं राजनीतिक तथा मनोवैज्ञानिक शैलियों का प्रकाश बनकर आधुनिक चिंतन की गहराइयों में अवतरित हुई है ।

1- अंधेरें बंद कमरे, पृष्ठ संख्या: 449

राकेश कृत उपन्यास "अन्तराल" नवीन चिंतन-धाराओं और जीवन पद्धति के लोगों की प्रयोग-धर्मिता का रूप है। इसमें भौतिकता के आविष्टन में बंधे कुमार और श्यामा के जीवन का संबंध नए-मूल्यों की प्रतिच्छाया है। आधुनिक भारतीय समाज में नारी अपने वैयक्तिक संबंध नए मूल्यों के तहत् रखना चाहती है। पुरुषों की " गर्लफ्रेंड " की भाँति आज की आधुनिकता "बायफ्रेंड के फैशन से आक्रांतित है। लता कुमार के प्रति अवधारित व्यक्तित्व को प्रकट करती है -

> " एक बात कहूँ ' और वह फिर एक बार उसके बहुत पास आई। यह भी तो हो सकता है कि बिना ब्याह के तुम मुझे ... । " (1)

कुमार का लता के साथ भौतिक संबंध रहा और इधर अब कुमार श्यामा से भी संबंध बनाए रखता है। इस प्रकार मोहन राकेश ने आधुनिक समाज में टिके भौतिक संबंधों का नए मूल्यों के संदर्भ में सूक्ष्म विश्लेषण किया है। मानवीय संबंधों के साथ ही साथ मानव के कुछ वैयक्तिक संबंध भी होते हैं। आज सामाजिक नए मूल्यों के उत्तरोत्तर विकास में वैयक्ति संबंधों को दो आधारों पर विभाजित किया है - पहला आधार, भौतिक आवश्यक्ता के आधार पर निर्मित वैयक्तिक मानव संबंध और दूसरा आधार है मनोवैज्ञानिक आवश्यक्ता के आधार पर निर्मित वैयक्तिक संबंध। "अंतराल " आज की युगीन- परिस्थितियों, बदलते मूल्यों के साथ मानव-संबंधों की कहानी है।

1- अंतराल: पृष्ठ संख्या: 55

आधुनिक काल में व्यक्तिवाद का विकास नए मूल्यों के घेरे में हो रहा है । "भूख" के समान भाग भी मनुष्य की एक प्रवृत्ति बन गई है । स्त्री-पुरुष का आकर्षण चिरन्तन है । यही एक-दूसरे की सबसे बड़ी दुर्बलता है । मोहन राकेश ने इसी अनाम-संबंध को बड़े ही मनोवैज्ञानिक ढंग से प्रस्तुत किया है ।

आज मानव संबंधों में पर्याप्त परिवर्तन है । प्राचीन तथा नवीन नैतिक मूल्यों का टकराव हो रहा है तथा यौन और आर्थिक संबंध दरार भरे जीवन की अभिव्यक्ति बनते जा रहे हैं । नयी पीढ़ी रूढ़ि का विद्रोह कर रही है और पुरानी-पीढ़ी नए लोगों की क्रांति को दबाना चाहती है । परिणामत: युवकों का अपने बुजुर्गों के प्रति कोई मान नहीं रहा है । एक कथन ध्यातव्य है -

> " The older generation's greatest concern in all its doings is to avoid scandal That is done by presenting a Respectable facade. But the younger generation is frank and out-spoken In fact there is a tendency to glorify, what is concerned "wrong" by the Establishment" ‖ 1 ‖

‖च‖ साहित्य शिल्प में नये मूल्यों को संप्रेषण-

मोहन राकेश के सभी औपन्यासिक पात्र भाषा की दृष्टि से अलग-अलग अस्तित्व बनाए हुए हैं ।

1- Illusterated Weekly of India - Author Ervel-E-Manzes June 16, 1974

संस्कारों के धरातल पर अर्जित यथार्थ जीवन के कथ्यात्मक रूपों में वे विचल गए है तथा चेतना के विविध पाश्वों को जीवन सन्दर्भों के व्यापक परिवेश में भाषा के माध्यम से ही अभिव्यक्त करने में सफल हुए हैं । "अन्तराल" उपन्यास वैयक्तिकता के सारे सन्दर्भ और सूत्र भाषिक संरचना के आधार पर संवेदन पूर्ण आयामों में इकट्ठे हो सके हैं -

> " उसका चेहरा चमड़े के मुखौटों की तरह दो हिस्सों में बंटा लगता था । दोनों हिस्सों के भाव भी तब अलग-अलग तरह के नजर आते थे - एक हिस्सा काफी दूर और तटस्थ जान पड़ता था जबकि दूसरा बहुत पास और आतुर ।" (1)

श्यामा के चेहरे को लेकर कहे गए ये शब्द कुमार की मानसिकता को जिंदगी से जुड़े अनुभूत व्यापारों में बदल देते हैं और मनोवैज्ञानिक प्रभावों की सृष्टि करते हैं । मानवीय जीवन की लालसा से उद्भ्रान्त चरित्रों की खोज ऊपर से इतनी निरर्थक दिखाई देती है । अनुभूति के धरातल पर उतनी ही मूल्यवान बन जाती है । इसका स्पष्ट चित्र उपन्यास में हुआ है कुमार और श्यामा उन सभी अस्तित्व रूपों की कहानी है, जो अपनी मूल राह से भटके हैं । इस तरह भाषा अस्तित्ववादी और मनोविश्लेषण-वादी राकेश की भाषा में भावानुगामिकता और नैराश्य का स्पर्श है । "अंधेरे बंद कमरे" उपन्यास में भी प्रयुक्त संवादों की भाषा और अधिक प्रभावी बन पड़ी है ।

1- अंतराल, पृष्ठ संख्या: 37

उसके संवाद न केवल औपन्यासिक कला-तत्व को विवेचित करते हैं अपितु वे पात्रों की मन:स्थितियों के ग्राह्य भी हैं। संवादों में प्रयुक्त भाषा में आए हुए शब्द जो रुक-रुक कर बोले या लिखे गए हैं, उनमें पात्रों की बैचेन मन:स्थिति के बिम्ब झांकने लगते हैं -

> " तुम कुछ नहीं जानते, हरबंस अपने दोनों हाथों को हवा में झुलाकर बोला बिल्कुल कुछ नहीं जानते तुम्हें पता है कि उस लड़की को मजबूरन उससे ब्याह करना पड़ा है ... क्योंकि ,,, क्योंकि ... ' " ǁ1ǁ

यह संवाद तो इतना व्यंजक है कि उसमें ने केवल पात्र की अपितु समूचे परिवेश की सामाजिक व्यवस्था की यथार्थवाद की ओर न जाने कितने मन में अभिप्सित उद्भावनाओं की तात्त्विक रूपरेखा उभर आई है, जिससे संदर्भित पात्र आगे-पीछे के तमाम संबंधों को अनुस्यूत करता हुआ दिखाई पड़ती है।

:: 0 ::

-:: पंचम अध्याय -::

-: मोहन राकेश के नाट्य साहित्य में समसामयिक चेतना -:

5- मोहन राकेश के नाट्य साहित्य में सम-सामयिक चेतना -

(क) आधुनिक परिवेश और मूल्य हीनता की स्थिति -

मोहन राकेश के नाटकों की प्रयोगशीलता आधुनिक-परिवेश का नया द्वार खोलती है । वे जीवन-सत्य की सूचक है तथा नवोन्मेष की प्रेरणा है । बदलते मानव-मूल्य सर्जनात्मक साहित्य में एक के बाद एक करके अन्वेषित हुए हैं । " आषाढ़ का एक दिन " नाटक इस मूल्यहीनता की परिणति का जीवन्त उदाहरण है । मल्लिका के घर की बदलती हुई स्थिति ही तीन अंकों के विभाजन को सार्थक बनाती है । इस प्रकार एक ही स्थान पर समय की गति के साथ बदलता हुआ परिवेश समय के हाथों उत्पीड़ित मानव-नियति की कथा कहता है, वह नियति है मल्लिका की और उसका निमित्त है - कालीदास । बदलते परिवेश की झांकी व्यक्ति की कुंठा-जन्य प्रतिभा को जिस तरह सोचने-विचारने पर मजबूर करती है । दृष्टव्य है -

"मुझे बरसों पहले यहां लौट आना चाहिए था । ताकि यहां वर्षा में भीगता, भीगकर लिखता, वह सब जो मैं अब तक नहीं लिख पाया ....। " (1)

समय के साथ संघर्ष के आयामों का द्वंद्वात्मक सम लय, मूल्यों की मांग करता है । समय की शक्ति स्वीकृति आधुनिकता के पद चिन्हों को और व्यक्ति को बरबस खींच ले जाती है संघर्ष की मूल धाराओं के भीतर टकराहट भरी अनेक कथा स्थितियां समाई हुई हैं ।

1- आषाढ़ का एक दिन, पृष्ठ संख्या-103

एक कथा-स्थिति के साथ दूसरी कथा स्थिति का योग सहज रूप से होता चलता है और टकराहट के पक्ष बदलते रहते हैं तथा मूल्यहीनता के स्वर-संधान अनायास ही होते रहते हैं । नाटककार का अभिमत है -

" साहित्य इतिहास के समय से बंधता नहीं,
समय में इतिहास का विस्तार करता है । " ﴾1﴿

"लहरों के राजहंस" नाटक का आधार भी ऐतिहासिक है, जिसमें रूढ़िगत संस्कारों को अतिमानवीय धरातल पर रखकर मूल्यहीनता की निदर्शना की गहरी चोट पहुचाई गई है । उद्वेग का वास्तविक कारणं अहम् है जिसका परिवेशात्मक दृष्टिकोण " मैं और "स्व" के भीतर इस तरह बंध गया है कि युग की प्रतिबद्धता उसे खण्ड-खण्ड में सोचने और करने के लिए व्यग्र बनाती है । सुंदरी का कथन है -

" कामोत्सव कामना का उत्सव है आर्य मैत्रेय । मैं अपनी आज की कामना कल के लिए टाल रखूं ... क्यों' मेरी कामना मेरे अंतर की है, मेरे अंतर में ही उसकी पूर्ति भी हो सकती है ।" ﴾2﴿

मोहन राकेश की विशेषता नए-नए महत्वपूर्ण कथानक व्यापक परिवेश और विविध-समस्याओं को देने में उतनी नहीं है जितनी कि आज के मनुष्य के भीतरी द्वंद्व को पकड़ने और सामान्य विषय-वस्तु के भी कुशल प्रस्तुतीकरण में यह भीतरी द्वंद्व समकालीन संवेदना और मूल्यहीनता की स्थिति का पर्याय है ।

- -

1- लहरो के राजहंस, भूमिका, पृष्ठ संख्या: 5

2- लहरों के राजहंस, पृष्ठ संख्या: 66

आधुनिक भारतीय मध्य-वर्गीय परिवार में बिखराव और संत्रास की कहानी मानव-मूल्यों के खोखलेपन तथा सतही हो जाने पर मात्र दूह बन गई है। "आधे-अधूरे" नाटक में बड़ी लड़की (बिन्नी) का यह कथन अनिश्चियात्मकता तथा दिशा-विहीनता की स्थिति का परिचायक है -

" यही तो मैं भी नहीं समझ पाती। पता नहीं कहाँ
पर क्या है जो गलत है।" (1)

"आधे-अधूरे" नाटक में मौजूदा जीवन की विडम्बनाओं को सार्थकता के साथ निरूपित किया गया है। आज के जीवन खण्डों की परिवेशात्मक मूर्तता, इस नाटक के द्वारा प्रतिबिम्बित की गई है।

यथार्थ को चुभती हुई व्यंजक भाषा में नाटककार ने अवमूल्यन की स्थिति का आंकलन अयूब पात्र से कराते हुए कहलाया है -

" औरत कब्रिस्तान क्यों बन जाती है। " (2)

मानवीय धरातल पर संवेदनशीलता की बाढ़ ने आंतरिक समझ को निमग्न कर रखा है। उत्पन्न प्रासांगिक अर्थों में विषय-बोध के सचेतन रूप बिखर से गए हैं। राकेश ने नाटकों के कथ्यात्मक माध्यम से यथार्थपरक दृष्टि को आधुनिक परिवेश में नया रूप दिया है। तेजी से बदलते मानवीय-संबध बाह्य-परिवेश की विसंगतियों से क्षत-विक्षत होते मनुष्य की संघर्ष यात्रा है। जिंदगी की ठोस वास्तविकता से गिरना एवं हर क्षण उससे जूझना, आधुनिक-युग परिवेश की एक उत्सव-धर्मिता है।

1- आधे-अधूरे, पृष्ठ संख्या: 27
2- पैर तले की जमीन, पृष्ठ संख्या: 45

(ख) पारिवारिक और सामाजिक मूल्यों में बदलाव-

मोहन राकेश के नाटकों में कथानक का विवेच्य विषय पारिवारिक और सामाजिक मूल्यों के संदर्भ को बदलते परिणामों में देखा जा सकता है। नाटकों में कथ्य के बदलते दृष्टिकोण व्यापक संदर्भों तथा यथार्थ-चित्रों पर अपनी पकड़ बनाए हुए हैं। उनकी नाट्य-रचनात्मक दृष्टि रूपात्मक प्रयोगों के साथ आधुनिक बन पड़ी है। आधुनिकता-बोध के नए नए अर्थों को ध्वनित करते हुए नए-नए मानव-मूल्य परिवार और समाज में बिखरे पड़े हैं। दायित्व-भावना की दृष्टि फीकी पड़ गई है। मनुष्य का इतिहास रिक्त कोष्ठों की पूर्ति तो नहीं कर सका बल्कि नए और अलग इतिहास के निर्माण की लालसा में उलझ गया। राकेश ने घटनाओं को जोड़ने वाली ऐसी कल्पनाओं को सामाजिक संदर्भ में अविभाज्य स्वीकार किया। (1)

सामाजिक परिधि में " आषाढ़ का एक दिन" नाटक आदर्श एवं यथार्थ का प्रस्फुटन करता हुआ एक कृति रूप है, जिसमें सामाजिक दुर्बलताएं तथा प्रबलताएं, द्वंद्व तथा दृढ़ता के साथ जूझते दृष्टिगत होते हैं। कालिदास आरंभ से अंत तक सर्जनात्मक व्यक्तित्व होते हुए भी दुर्बल इच्छा का प्रतीक है तथा मल्लिका साधारण होते हुए भी उदात्तता का सोपान सिद्ध हुई है। ग्राम प्रान्तर के सामाजिक संबधों को लेखक ने यथार्थता के साथ दर्शाया है -

> " आर्य विलोम। आप अपनी सीमा से आगे जाकर बात कर रहे हैं .... आप यहां इस समय एक अनचाहे अतिथि के रूप में उपस्थित हैं। " (2)

1- लहरो के राजहंस, भूमिका, पृष्ठ संख्या: 5

2- आषाढ़ का एक दिन, पृष्ठ संख्या: 42

मल्लिका का विलोम और कालिदास के बीच में आ जाना सामाजिक संबंधों की चुनौती है । अंततः शारीरिक एवं मानसिक धरातल पर वह मध्य में ही रहती है । यही आज के बदलते हुए मूल्यों में सामाजिक संदर्भ में आधुनिकता बोध की प्रस्तुति करता है । नाटक में आधुनिकता और समकालीन अनुभव के कथ्यगत आयाम सामाजिक संदर्भ को उभार रहे हैं । इस दृष्टि से राकेश के बीज-नाटक संत्रास की घुटन का सामाजिक पक्ष उगलने में सिद्ध हैं । बीज-रूप से व्यक्तियों को संबंधों उनकी मानसिक स्थितियों की करालता को एक घेरा बनाया गया है जो सचमुच पारिवारिक विघटन तथा मूल्यों का अवमूल्यन ही है । राकेश की मानसिक चेतना की जटिलता, सतत् चिंतन और रचना-प्रक्रिया का अंदाज इन बीज-नाटकों से लगाया जा सकता है स्त्री और पुरूष मूलतः इन नाटकों में दो पात्र हैं, जो हर परिवार के स्त्री-पुरूष के प्रतिनिधित्व को प्रस्तुत करते हैं । जीवन की सार्थकता, नीरसता और रिक्तता को ही उन पात्रों ने महसूस किया है । पुरूष को लगता है कि जब वह अकेला था तब भी ऊब थी , अब भी है । अब अपना घर है , स्त्री है तब भी उतनी ही शून्यता है । " (1)

नाटककार की यह पूरी की पूरी आत्माभिव्यक्ति है । पुरूष की मानसिक उदासी परिवर्तन की और नएपन की चाह आज का मनोवैज्ञानिक सत्य है । आज के सामाजिक वृत्त में व्यक्ति को महत्वाकांक्षी बना दिया है, वह निजता में सब कुछ समेट लेना चाहता है किन्तु मिलता कुछ भी नहीं उसकी यह मानसिक रिक्तता कुण्ठाग्रस्त बनाकर बदलते मूल्यों में आधुनिकता के चौराहे पर खड़ा कर देती है ।

1- अंडे छिलके, अन्य एकांकी तथा बीज नाटक-शायद, पृष्ठ संख्या:144

समाज में हर चेहरे पर चस्पा मुखौटा, नया जीवन बिताने का निश्चय करके आगे बढ़ता है और अधूरेपन के एहसास के कारण सफलता के स्थान पर उसे विफलता ही मिलती है, फिर सामाजिकता को नकारता हुआ वह उसी माहौल में परिवेशात्मक विकृति का कारण बन जाती है । " आधे-अधूरे" नाटक में इस संदर्भ को चार पुरुषों के संवादों में रूपायित किया गया है । स्त्री, पारिवारिक अपेक्षा पर बल देती हुई व्यक्ति के दायित्व पर प्रकाश डालती हुई कहती है -

" एक आदमी है, घर बसाता है, क्यों बसाता है ।
एक जरूरत पूरी करने के लिए । कौनसी जरूरत ' " (1)

प्रयुक्त प्रश्न-चिन्ह व्यक्ति के अधूरेपन के साक्ष्य हैं तथा अन्योन्याश्रित रहकर सामजिकता के मूल्यों को चुनौती देते हैं प्रतिक्रियात्मक एवं आक्रामक समस्याएं परिवार तथा समाज को इस प्रकार झकझोर रही है । "आधे-अधूरे" जीवन के बहुत अनुभव-खण्ड प्रश्नात्मक बन रहे हैं । स्त्री-पुरुष के बीच परिवार के उठते-गिरते प्रश्न सामाजिकता की दुहाई में अब छिप नहीं सकते । उनका बदलते मानों के साथ समय-सापेक्ष महत्व है ।

(ग) सम्बन्ध हीनता तथा सम्बन्धों के नये आयाम -

मोहन राकेश का नाट्य, चिंतन-मानसिकता के साथ समकालीन रचना संदर्भ में संबंध-हीनता के प्रश्न से जुड़ा हुआ है । उनकी रचनाओं में निहित अकेलापन, निराशा, विश्वासहीनता तथा उखड़ापन जहां संबंधों को अलगाव के कगार पर खड़ा कर देते हैं वहां क्षण-बोधीय सत्यता के कारण स्त्री-पुरुष अन्यत्र का दामन पकड़कर संबंधों के नए आयाम बनाते हैं ।

1- आधे-अधूरे, पृष्ठ संख्या: 98

"आधे-अधूरे" नाटक की एक ही धुरी में घूमते हुए चार भिन्न-पुरुषों के एक स्त्री से चार संबंधों की कहानी है । पहला पुरुष अधिकार की भावना से उदीप्त है संबंध की डोरी को पकड़कर वह अब अनाधिकृत होकर घर में नहीं रहना चाहता । संबंध के नए आयाम की उसे तलाश है । पुरुष का कथन है-

> " मैं इस घर में एक रबड़-स्टैम्प भी नहीं सिर्फ एक रबड़ का टुकड़ा हूँ बार-बार घिसा जाने वाला रबड़ का टुकड़ा । इसके बाद यहाँ कोई मुझे वजह बता सकता है । एक भी ऐसी वजह कि क्यों मुझे रहना चाहिये इस घर पर । " (1)

स्वकल्पित-दृष्टि, दिशा-विहीनता की परिचायक है । तथा संबंध की डोर इस टूटन का वह रेशा जिसकी पहचान भी मिट गई है - का प्रतीक है । निराशा और अकेलापन उसका संबल है । आंतरिक यथार्थ ही सभी अभिज्ञानों का बिम्ब है, जिसके कारण मनुष्य की आंतरिक और मानसिकता अस्तित्व बोधीय बनकर मुखर हो उठती है । गार्हस्थ का अप्राप्यन संबंध की प्रतिबद्धता को उजागर करता है परन्तु बेगानी परानुभूति स्थिति "स्व" के प्रति भी संदिग्ध हो जाती है । भिक्षु आनंद का वक्तव्य यहाँ एक निष्कर्ष है -

> "मैं घर देखना चाहता था, नन्द, घर ... कक्ष या उद्यान नहीं । तुम्हारे पास कक्ष और उद्यान सब कुछ है, घर नहीं है ... ।" (2)

1-आधे-अधूरे, पृष्ठ संख्या: 42
2- लहरों के राजहंस, पृष्ठ संख्या: 105

आत्मीयता का अभाव संबंध-विहीनता का द्योतक है । सम-सामयिक जीवन की अभिव्यक्ति के लिए आत्मापरक दृष्टि आज रिक्तता से भरी पड़ी है । द्वंद्वात्मक चेतना का आत्मगत यह रूप कथ्य में नए अंत: तलाश की ओर भी भटकता है । संबंध-विहीनता को नाटककार के नए आयाम भी अर्पित किए हैं, जिससे परम्परानुमोदित अवधारणा का खण्डन सिद्ध होकर के सामान्य मनोविज्ञान की एकरूपता को बल मिला है । डा० गोविन्द चातक ने लिखा है -

" लेखक, नायक विषयक परम्परावादी अवधारणा को खण्डित करना चाहता है । नया नाटक आदमी की तलाश महानता में करने के बजाय लघुता में करता है । इस लघुता में कालिदास और उसका प्रतिद्वंद्वी विलोम एक ही भूमि पर खड़े दिखाई देते हैं । " (1)

मोहन राकेश के साहित्य में पारिवारिक तथा सामाजिक संबंध-हीनता का परस्पर की ऊब और स्वार्थपरता के माध्यम से उभरी है । यह स्थिति कही-कहीं पात्रों की नोंक-झोंक में स्पष्ट हुई और कहीं-कहीं एक ही घर में रहते लोगों के आचरण पर प्रक्रिया स्वरूप उद्भूत हुई । वास्तव में यही संबंध हीनता संबंधों के उन नए आयामों का रूप निश्चित करती है जिनसे मनुष्य के सामाजिक संदर्भों की नई व्याख्या सामने आती है । संबंधों के स्नेह दौर में नैतिक मान्यताओं के अर्थहीन हो जाने की स्वीकृति प्रबल रूप से सामने आई है । स्त्री-पुरुष के मध्य केवल बायलोजिकल संबंध रह गए अत: प्रेम विवाह और आचार-विचारों के प्रति कोई ग्राही दृष्टिकोण नही है ।

1- आधुनिक नाटक का "मसीहा" मोहन राकेश पृष्ठ संख्या:55-56

केवल "सैक्स" एक मात्र सूत्र है । जो नर-नारी के मध्य यौन-संबंध बनाए हुए है । नैतिकता का अनुबंधन शिथिलीकृत होकर आज "संशयात्म विनश्यति" के भावों को उरेह रहा है ।

(घ) यथार्थ के प्रति बदला हुआ दृष्टिकोण -

नाट्य-साहित्य में यथार्थवादी रुझान ऐतिहासिक संदर्भ के साथ जुड़कर प्रकट हुई है । मोहन राकेश भाव-बोध के समर्थक है । इसी वजह से उन्होंने विशिष्ट वर्ग के साथ विशिष्ट संस्कृति को स्थापित करते हुए बदलते हुए युग की आकांक्षाओं में यथार्थ-परक दृष्टि को अन्वेषित किया । युग विशेष में भौतिक आवेष्टन अंतर्विरोधी व्यक्तित्व को अपने में समेटे हुए है । स्वातंत्र्य की संज्ञा, शून्य हो गई है, जन मानसिकता के तेवर पहचानने कठिन हो गए हैं । वृहत्तर संघर्ष बलवती भूमिका पर समकालीन वस्तु-सत्य को उरेह रहा है । मध्यम-वर्ग में उपजी विशिष्ट चिंता धारा नाट्य साहित्य का रसायन बन चुकी है । आधुनिकता की इस मानसिकता को वैचारिक धरातल पर राकेश ने समझने की कोशिश की । उन्होंने युगीन संगति को चाहे वे अपनी कुंठाओं पर आधारित हों अथवा व्यापक संदर्भों को अकेरती है, अपने नाटकों का विषय बनाया । "आषाढ़ का एक दिन" यथार्थ परक भूमि पर नगरीय तथा ग्राम्य अपेक्षाओं के युगबोधी चित्र खींचता है । मल्लिका का कथन में यह संदर्भ घनीभूत है -

" जानती हूं कि कोई भी रेखा तुम्हें घेर ले तो तुम
घिर जाओगे ।" (1)

1- "आषाढ़ का एक दिन" पृष्ठ संख्या: 45

और यही हुआ भी । कोमल-कलाकार अपने जीवन को घेरने वाली रेखाओं में घिर ही जाता है । कालिदास के पास एक और बड़ा प्रश्न है कि नगरीय अपेक्षाएं पुरानी ग्राम्य अपेक्षाओं से कैसे जुड़ेंगी ' इस प्रश्न-उत्तर में मल्लिका की उदात्तता प्रेरणामयी हो जाती है । प्रतिभा का विकास नगरीय बोध के साथ युग्म-बद्ध है । मनोवैज्ञानिक यथार्थ-वादिता का सूक्ष्म विश्लेषण करते हुए डा० पुष्पा बंसल का यह कथन स्मरणीय है -

" प्रस्तुत नाटक का नायक भी एक के बाद एक
रेखाओं में बंधता चलता है । जब तक कि उन रेखाओं
में उसका दम ही न घुट गया हो । " (1)

वस्तुतः मल्लिका प्रेरिता है । ठीक विपरीत राकेश ने "लहरों के राजहंस" नाटक में भोग्या नारी की तस्वीर भी यथार्थ की कूची से रंग-रंजित कर दी है । नंद की पत्नी सुंदरी भोगलिप्त होकर वैभव की विलासिता से घिरी हुई है । परिवेश-जगत स्थितियों एवं अंतर्विरोधों के सही विश्लेषण में नन्द और सुंदरी के हस्ताक्षर भोगलिप्त स्वीकृति का द्वंद्वात्मक प्रतिपादन करते हैं । नन्द सुंदरी के सामने आत्म-स्वीकार करता है ।

" मैं चौराहे पर खड़ा नंगा व्यक्ति हूँ जिसे दिशाएं
लील लेना चाहती है और अपने को और ढकने के लिए
जिसके पास आवरण नहीं है जिस किसी दिशा की ओर
पैर बढ़ाता हूं लगता है कि दिशा स्वयं अपने ध्रुव पर
लौट रही है और मैं पीछे हट जाता हूं ।" (2)

1- मोहन राकेश का नाट्य साहित्य, पृष्ठ संख्या: 9-10
2- लहरों के राजहंस, पृष्ठ संख्या:117

अपनी प्रतीकात्मकता में नन्द के दिल और दिमाग का यह अंतर्द्वंद्व दोहरे धरातल पर चला है । सुंदरी उसके लिए भौतिक उपलब्धि है । उसका विग्रह रूप है । सुख के चरम पर पहुंच कर उदासीनता उसकी नियति बन चुकी है और फिर उसका छाया रूप श्यामांग उतरता है । वैचारिक धरातल पर अंतर्द्वंद्व की यह यथार्थ-परक दृष्टि है । परिवर्तन का आधार अनिर्धारित विचारधारा होती है ।

"आधे-अधूरे" के आरंभ में जिस सामाजिक यथार्थ के धरातल पर परिवार की आधुनिकता से उत्पन्न हुए प्रश्नों को उतारा गया है । अंत में उसकी परिणति ऊब, अतृप्ति और कुंठा के भावनात्मक अंकन में हो जाने से मुखर हो उठी है और इधर आधुनिकता के परिवेश में एकांकी नाटक साहित्य में मोहन राकेश ने सरल पात्र दीवानचंद को कृत्रिमता के बीच लाकर खड़ा कर दिया है । परिवेशात्म सूझ-बूझ आदर्श को धक्का लगाकर यथार्थ का परिधान ओढ़ती है । माधुरी का यह कथन इस तथ्य की पुष्टि है -

> " यह जबरदस्ती का रिश्ता है । किसी दिन दो-चार गुलाब जामुन ले आएंगे, किसी दिन खट्टे चनों का कुल्हड़ भर लाएंगे और जाते हुए एक मैला पुराना नोट पम्मी के हाथ में दे जाएंगे ।" (1)

सरलता पूर्ण सद्भाव पर यह एक निर्मम प्रहार है । मोहन राकेश इस तरह की कथ्यात्म दृष्टि से पाठक वर्ग को बता देना चाहते हैं कि मूल्यों का ह्रास तथा यथार्थ के बदलते प्रतिमान इतने जटिल और दुरूह हो गए हैं जो मानवता की स्नेह-रज्जु को तोड़ने में हिचक नहीं करते । राकेश कथा-वस्तु के माध्यम से यथार्थ तात्त्विक और ग्रामों को सार्थकता प्रदान करते हैं। उन्होंने दृश्यबंध की परिकल्पनाओं में मनुष्य का पंगु व्यक्तित्व भलिभांति देखा है जो भोग और विराग के बीच होने वाले द्वंद्व का परिचायक है ।

1- अंडे के छिलके , अन्य एकांकी तथा बीज नाटक, पृष्ठ संख्या: 73

(ङ) साहित्य कथ्य में नये मूल्यों का संप्रेषण -

साहित्य युग की कृतियों एवं स्वीकृतियों का सच्चा प्रतिबिम्ब होता है । युग-जीवन की वास्तविकता नाट्य-साहित्य में यथार्थ-शैली बनकर अभिव्यक्त हुई हैं । नाटक में नए मूल्यों का संप्रेषण अभिव्यंजन की दृष्टि से और अधिक सफलीभूत हुआ है । "लहरों के राजहंस" नाटक की भूमिका में राकेश ने रचनाकार की आंतरिक बैचेनी को प्रस्तुत करते हुए मूल्य-संप्रेषित प्रक्रिया को साधरणीकृत दृष्टि से देखते हुए लिखा है -

> " जब नाटक प्रस्तुत हुआ तो नाटककार को लग रहा
> था कि परीक्षा उसी की है परीक्षक हैं वे सब लोग ।" (1)

इससे रचना-प्रक्रिया और नए मूल्यों की संप्रेषणीयता का प्रमाण मिलता है । नाटककार को कितना उदार अधिक सतर्क, गंभीर और उत्साहित रहने की अपेक्षा है, यह मोहन राकेश ने अनुभव भी किया और उसका साक्षात प्रमाण भी दिया । "लहरों के राजहंस" के नए संस्करण के तृतीय अंक के पुनर्लेखन को लेकर राकेश ने मूलवत्ता की स्थिति को समाहार करने पर बल दियाहै-

> " मुझे यह सोचने में संकोच नहीं है, कि बिना
> रात दिन श्यामानंद के साथ नाटक के वातावरण
> में जिए नाटक का यह रूप नहीं मिल पाता । " (2)

1- लहरो के राजहंस-भूमिका : पृष्ठ संख्या: 24
2- नटरंग-1972, नाटक का रंगमंच, पृष्ठ:17

नए मूल्यकों का संप्रेषण नाटक यात्रा के दौरान नाटक भूमि में साफ देखा जा सकता है । जगत की सारी जड़ता और प्रचलित रुढ़ियों को तोड़ने वाला यह नाटक अंर्तद्वंद्व को खोज निकालने की आकुलता को समाहार किए हुए है । "लहरो के राजहंस" नाटक में नंद अपनी छटपटाहट में कक्ष के एक सिरे से दूसरे सिरे तक टहलता है और कहता है -

" इतना समझ में आता है कि जिए जाने से जीवन धीरे-धीरे चुक जाता है । कि हर उन्मेष का परिणाम एक निमेष है और काल के विस्तार में उन्मेष और निमेष दोनों अस्थायी हैं । कि सुख-सुख नही, कोई पर फिसलते पांव का स्पंदन मात्र है । मात्र-रेत में डूबती बूंद की अकुलाहट । " (1)

नंद के आंतरिक संघर्ष को संकेतों में राकेश ने भली भांति स्पष्ट किया है । एक चौंकने वाली अस्तव्यस्ता, मनःस्थिति और प्रयत्न की असफलता व्यक्ति को दो तरह खिंचा हुआ मन को चित्रण मोहन राकेश की संवेदनशीलता और सूक्ष्मता का परिचायक है । नन्द के दुर्बल मन की अस्थिरता और द्वंद्व को व्यक्त करने का यह नाटकीय माध्यम है ।

" आधे-अधूरे नाटक, हिन्दी साहित्य में नितान्त निम्न प्रकार का मूल्यवादी स्वरूप निहित है । आज की समकालीन संवेदना का प्रतिरूप है ।

1- आधे-अधूरे, पृष्ठ संख्या: 31
1- लहरों के राजहंस, पृष्ठ संख्या: 108

परिवेशात्मक कटु यथार्थ को नाटक का आधार बनाया गया है । एक तीव्र अंतर्द्वंद्व अभिव्यक्ति की तीव्र छटपटाहट बिखराव पूर्ण बन पड़ी है । नाटककार ने बड़ी लड़की के माध्यम से नए मूल्यों से नए मूल्यों का अन्वेषण कराते हुए प्रस्तुत किया है -

" मेरा अपना घर । हाँ और मैं आती हूं कि एक बार फिर खोजने की कोशिश कर देखूं कि क्या चीज है वह इस घर में जिसे लेकर बार- बार मुझे हीन किया जाता है ।" ‡1‡

वस्तुतः मोहन राकेश ने नाटकों को रंगमंचीय दृष्टिकोण से समझा औरसमझाया है । उन्होंने हिन्दी की नाट्य परम्परा के लिए नए मार्ग को प्रशस्त किया है । समय के साथ जीवन के कटु अनुभव से दूसरे नाटक के आरंभ में सुंदरी का अवसादपूर्ण अभिनय बोध-गम्यता से तथा तीसरे नाटक से तनावपूर्ण भयाक्रांतता से नारी पात्रों का मूल्यवादी रूप छिन्न-भिन्न हो गया है और मनुष्य की विवशता को भी उघाड़कर रख दिया गया है ।

‡च‡ साहित्य शिल्प में नये मूल्यों का संप्रेषण-

भाषा की प्रयोग-धर्मिता आधुनिक युग में मानवीय पीड़ा का चितेरा बनकर चित्रित हुई है । इनके उपन्यासों की भाषा सिर्फ विचारों की नहीं बल्कि मानवीय भावनाओं एवं संवेगों के संघर्ष की भी अभिव्यक्ति है ।

1- आधे-अधूरे, पृष्ठ संख्या: 31

भाषा के स्तरों की पहचान समकालीन रचनाओं के संदर्भ में यथार्थ-दर्शन के सम्मिलित वेदना रूप को कलात्मक अभिव्यक्ति देने से जुड़ी हुई है । बदलते युगों में मानवीय वेदना को आत्यंतिक मानकर सर्व-स्वतंत्र बना लिया गया है जिससे भाषा का समंजन दायित्वपूर्ण चरणों में और अधिक बढ़ गया है । भाषा की मनोवैज्ञानिकता उनकी उस दिशा का संकेत है , जो कथ्य में अभिप्सित है । मोहन राकेश के शब्द प्रयोगधर्मिता से ओतप्रोत हैं । उन्होंने नाटकों के शब्दों के लक्ष्यार्थ का सन्निवेश करके भाषायी भंगिमा प्रदान की है । उनकी भाषा भावों की सहज-वाहिका है । मोहन राकेश ने स्वयं भी कहा है -

> " जो भाषा हमें विरासत में मिली है वह खानों में विभक्त भाषा थी फिर बगैर किसी ध्वनि के एक प्रेमचंद की प्रगतिशील भाषा थी फिर जयशंकर प्रसाद और अज्ञेय की सुघड़ तथा अभिजात भाषा आई । लेकिन भाषा को इतनी विकसित करने की आवश्यक्ता थी कि वह हमारी भावनाओं को व्यक्त कर सके ।" [1]

मोहन राकेश के नाटकों में प्रयुक्त भाषा तात्कालिक परिवेश को सहज ही उपस्थित कर देती है । संस्कृत तथा तत्सम शब्दों का प्रयोग विश्वसनीयता प्रदान करता है । " आषाढ़ का एक दिन ", लहरों के राजहंस" , "आधे-अधुरे", "पैर तले की जमीन", "अण्डे के छिलके", अन्य एकांकी तथा बीज नाटक में आधुनिक युग की-मिली-जुली भाषा है जो संवेदना के स्तर से जुडी हुई है ।

1- मोहन राकेश:साहित्यिक और सांस्कृतिक दृष्टि पृष्ठ संख्या:157-158

डा०गिरीश रस्तोगी के इस कथन द्वारा राकेश की भाषा की जीवन्तता पर गहरा प्रकाश पड़ता है -

" नाट्य-भाषा के तीन नमूने उन्होंने दिए हैं - साहित्यक होते हुए भी गहरी नाट्यानुभूति से जन्मी भाषा - ॥आषाढ़ का एक दिन॥ और " लहरों के राजहंस " ॥ जीवन्त बोल चाल की भाषा ॥"आधे-अधूरे"॥ और बेतरतीब, बेतुकी, टूटती-फूटती भाषा कुछ एब्सर्ड नाटकों का आभास देती हुई ॥ बीज नाटक ॥ ।" ॥1॥

"आषाढ़ का एक दिन" नाटक परिष्कृत प्रांजल भाषा से प्रयुक्त होकर मानवीय संवेदना को अपने ही में बटोरे हुए हैं । कालिदास का कथन है -

"मैं नहीं जानता था कि अभाव और भर्त्सना का जीवन व्यतीत करने के बाद प्रतिष्ठा और सम्मान के वातावरण मे जाकर मैं कैसा अनुभव करूंगा । मन में कहीं एक आशंका थी कि यह वातावरण मुझे छा लेगा और मेरे जीवन की दिशा बदल देगा ...... और यह आशंका निराधार नहीं थी ।" ॥2॥

1- नटरंग अंक-21, पृष्ठ संख्या: 29-30

2- आषाढ़ का एक दिन, पृष्ठ संख्या: 99

अनुभूति कृत्यात्मक घेरे में घिरी एक भाषा साहित्यकार की तीव्र तड़पती, कचोटती आत्म-कथा से सम्पृक्त होकर भावों के प्रश्रय में उद्भावित हो रही है । इसी तरह " लहरों के राजहंस " नाटक में राकेश ने नन्द-सुंदरी और बुद्ध के कथानक को भाषीय व्यंजनापरक आवरण प्रदान किया । जो मनुष्य के मन की गहराई तक जाकर गहन मानसिक द्वंद्व को उभारती है । वाक्य छोटे-छोटे हैं । वाक्य-रचना अभिनय की दृष्टि से सुदृढ़ है परन्तु भाषा की गहरी अर्थवत्ता इनमें जुड़ी है ।

> " नंद... ठहरो सुंदरी बात तो सुनो ... नहीं सुनोगी तुम कभी नहीं सुनोगी । "(1)

नंद के मन की दुविधा और निश्चय-अनिश्चय की प्रक्रिया का संश्लिष्ट एवं प्रयुक्त भाषा में हुआ है । शब्द का ओज एवं प्रयोग भी अनूठा बन पड़ा है । जिससे नाटक में आकर्षक भंगिमा प्रदीप्त हो उठी है । शब्द सरल, दुरूह, तत्सम, तद्भव सभी तरह के हैं । सामाजिक शब्दों का भी विधान है । भाषा की गतिशीलता एवं प्रतीकात्मकता शिल्प गठन में संरचना की दृष्टि से उपयुक्त बन पड़ी है ।

1- " लहरों के राजहंस, पृष्ठ संख्या: 74

उपसंहार

:: उपसंहार ::

सन् 1957 के विद्रोह के पश्चात देश में विभिन्न धार्मिक एवं साहित्यिक संस्थाओं ने राजनीतिक चेतना के लिए उपयुक्त पृष्ठभूमि तैयार कर ली थी । देश की राष्ट्रीय भावना आधुनिक साहित्य में इस दृष्टि से नाटक उपन्यास तथा कहानी के माध्यम से दिखाई देने लगी थी । प्रारंभ में प्राचीनता का गर्व भविष्य के प्रति विश्वास लेकर देशभक्ति की लहर में तरंगायित होने लगा था । परिणामस्वरूप देश में राजनीतिक एवं राष्ट्रीय जागृति का इतिहास शुरू हुआ । बंगाल की रॉयल एशियाटिक सोसायटी के आधार पर हिन्दी प्रदेश में भी शैक्षणिक एवं सांस्कृतिक परिवार का निर्माण हुआ । जिसमें बनारस की काशी नागरी प्रचारिणी सभा सन् 1983 तथा प्रयाग का हिन्दी साहित्य सम्मेलन 1920 विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं । हिन्दी साहित्य का कथ्यगत एवं शिल्पगत आधार - पत्रकारिता के विकास के साथ आगे बढ़ा । भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की पत्रिकाओं के प्रकाशन के साथ हिन्दी गद्य-साहित्य के अभिनव दिशा रूप को बल मिला । भारतेन्दु की " कवि वचन सुधा " (सन् 1868), "हरिश्चन्द्र मैगजीन" (सन् 1873), बद्रीनारायण चौधरी की " आनंद कादम्बिनी " (सन् 1881), प्रताप नारायण मिश्र का " ब्राह्मण " (सन् 1883) , राधाचरण गोस्वामी का भारतेन्दु (सन् 1883) आदि पत्रिकाओं में उपन्यास, कहानी, नाटक के विविध बदलते श्रृंखला रूपों में कथ्य और शिल्प के साथ प्रकाशित होते रहे हैं ।

इसी क्रम में तत्कालीन साहित्य और समाज का प्रतिनिधित्व करने के लिए साहित्य के नए प्रतिमानों के प्रश्रय में आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने " सरस्वती " (1900) पत्रिका का प्रकाशन आरंभ किया और जयशंकर प्रसाद की " इन्दु " (सन् 1909), मुंशी प्रेमचन्द की " प्रगतीशील" मासिक पत्रिका (1930) आदि का साहित्य के नए परिप्रेक्ष्य में विशेष योग है । साहित्यिक कथ्य और शिल्प को अभिनव दिशा देने में पत्रिकाओं का ही विशिष्ट योगदान रहा है । फलस्वरूप साहित्यिक आन्दोलन उपस्थिति हुए ।

नाट्य जगत में भारतेन्दुहरिश्चन्द्र का नाम उल्लेखनीय हैं । उनके नाट्य कथानक पौराणिक कथ्यों से यदि परिपूर्ण है तो दूसरी ओर राष्ट्रीय समस्याओं की जागरूकता से ओत-प्रोत है जैसे " चन्द्रावली नाटिका " और " भारत - दुर्दशा " । शिल्प - विधान की दृष्टि से उन्होंने नाट्य-तत्वों में नवीनता का समावेश किया है । वे जीवन के स्वानुभूत-परक वास्तविक ज्ञान से नाट्य-रचना की सफलता की आशा करते थे ।

उन्होंने देशप्रेम, सामाजिक सुधार, प्रकृति वर्णन आदि का तत्व-विवेचन शिल्प और कथ्य के माध्यम से किया भारतेन्दु युगीन परवर्ती गद्य-विचारकों में " बद्री नारायण चौधरी " प्रेमधन ", पंडित बालकृष्ण भट्ट, प्रताप नारायण मिश्र, गंगा प्रसाद, आदि हैं । तदन्तर मिश्र- बन्धुओं ने साहित्यिक प्रतिमानों को समसामयिक मान्यताओं के साथ प्रतिपादित किया । इस प्रकार भारतेन्दु युगीन साहित्य-शिल्पकार भारतीय एवं पाश्चात्य - साहित्यिक उद्भावनाओं से जुड़कर कथ्य और शिल्प को व्यवस्थित रूप देते रहे हैं । भारतेन्दु ने स्वयं ही सामाजिक, धार्मिक, पौराणिक, राष्ट्रीय एवं राजनैतिक नाटकों की रचना की ।

उनकी रचनाओं में प्रेम मुख्य-तत्व है । वह या तो ईश्वरोन्मुख प्रेम है । या देशोन्मुख । श्रीनिवास दास, राधाकृष्ण दास, किशोरी लाल गोस्वामी, रावकृष्ण देव शरण सिंह आदि के " रणधीर , " प्रेम-मोहिनी ;" "तप्ता संवरण ", " संयोगिता स्वयंवर ", " दुखनीवाल ", "मयंक-मंजरी " आदि नाटकों में भारतेन्दु द्वारा निर्धारित नाट्य-परम्परा आगे विकसित हुई है । काल-प्रभाव के कारण नाट्य साहित्य अभिनव शाला के अभाव से शनैः शनैः विकास कर सका । देवकीनंदन त्रिपाठी, राधाचरण गोस्वामी आदि में " अंधेर नगरी ", " बैल छै टके को " आदि प्रहसनों की रचना कर सामाजिक धार्मिक और राजनीतिक कुरीतियों के दौर्बल्य को प्रकट किया । कालान्तर में जिस प्रकार भारतीय जन का बौद्धिक धरातल पाश्चात्य से प्रभावित हुआ उसी प्रकार नाटकों में भी परिवर्तन आया । संस्कृत बंगला और अंग्रेजी से अनूदित नाटकों ने भी इस क्रम में अपना योग प्रदान किया ।

पंडित महावीर प्रसाद द्विवेदी ने पारसी रंगमंच के लिए नाटकों की रचना की । ऐसे लेखकों में बेताब, आगाहश्र, कश्मीरी, शैदा, जव्हर, राधे-श्याम कथावाचक आदि के नाम उल्लेखनीय हैं । धीरे-धीरे हिन्दी नाटककारों ने पाश्चात्य नाट्य-पद्धति पूर्णतया अपना ली । कथ्य और शिल्प को भारत के प्राचीन गौरव के परिपार्श्व में निरूपित करने का कार्य साहित्य के बदलते प्रतिमानों के साथ जयशंकर प्रसाद ने किया । उन्होंने ऐतिहासिक नाटकों में राष्ट्रीय भावनाओं का पोषण करते हुए एक नवीन जीवन-दर्शन प्रस्तुत किया । कथानकों के ऐतिहासिक आधार के कारण प्राचीन भारत के गौरव को बल मिला । कथ्य के साथ शैल्पिक - विधान

में अधुनातन भारत की तसवीर, संघर्ष, आदर्श, संवाद-योजना के माध्यम से खींची गई । उन्होंने कुल मिलाकर इस तरह तेरह नाटकों की रचना की । परम्परागत मूल्य, मर्यादा, गौरव एवं आदर्श संस्कारों को तत्वों के साथ संगृहीत करके उन्होंने अपने नाटक के विषय-वस्तु का निर्माण किया । इस प्रकार प्रसाद का हिन्दी नाट्य-परम्परा में ऐतिहासिक महत्व है । उन्होंने स्त्री-पुरुष की जातीय विशेषताएं पवित्र-प्रेम, स्नेह, सहिष्णुता का अत्यन्त सूक्ष्मता के साथ निर्वाह किया ।

उत्तरोत्तर नाट्य-परम्परा के क्रम में लक्ष्मीनारायण मिश्र, बाबू वृंदावनलाल वर्मा, हरिकृष्ण प्रेमी, विष्णु प्रभाकर, उपेन्द्रनाथ अश्क चंद्रगुप्त विद्यालंकार आदि नाटककारों ने नाटक की परम्परा को आगे बढ़ाया। प्रसाद के साहित्यिक नाटकों में जहां ऐतिहासिकता थी वहां इन नाटककारों ने समसामयिक समस्याओं को अधिक कलात्मक निपुणता से कथ्य तथा शिल्प में निरूपित किया । परम्परागत मानदण्डों को उन्होंने बुद्धि की कसौटी पर कसा और पुनरुत्थान की भावना को सबल बनाया । इन नाटककारों के नाट्य-साहित्य में यथार्थ दृष्टि और परिवेश का कलात्मक कसाव है । इसी समय के अन्य प्रमुख नाटककारों ने दुर्गादत्त पाण्डे कृत नाटक, मैथिली शरण गुप्त कृत " तुलोत्तमा ", विश्वम्भरनाथ कृत " भीष्म," गोविन्द वल्लभ पंत कृत परमात्मा की प्रसिद्धि है । इन लेखकों ने विषय का प्रतिपादन भौतिक ढंग से करने का प्रयास किया है । एक और वृन्दावनलाल वर्मा कृत " राखी की लाज", "झांसी की रानी ", आदि ऐतिहासिक नाटकों को सहज अभिनव की दृष्टि से सफलीभूत बना रहे थे तो दूसरी ओर सेठ गोविन्द दास ने हर्ष, प्रकाश, कर्तव्य आदि ऐतिहासिक एवं सामाजिक नाटक लिखे इनमें तत्कालीन सामाजिक व राजनीतिक समस्याएं अत्याधिक कुशलता के साथ प्रतिपादित हुई है ।

जगन्नाथ प्रसाद मिलिन्द कृत " प्रताप-प्रतिज्ञा", चतुरसेन शास्त्री कृत " अमर सिंह राठौर ", माखनलाल चतुर्वेदी कृत " कृष्णार्जुन युद्ध", पाण्डेय बेचन शर्मा "उग्र" कृत " महात्मा ईसा ", आदि में इस काल के दूसरे वर्ग के नाटक हैं। यद्यपि कलात्मक परिपक्वता प्राप्त नहीं होती फिर भी उनका अपना अलग महत्व है । हरिकृष्ण प्रेमी कृत "प्रतिशोध" "रक्षाबंधन, "स्वप्न-भंग आदि नाटकों में राष्ट्रीयता की भावना विशेषरूप से उभरकर आई है । तत्कालीन सामाजिक, राजनीतिक एवं अन्य समस्याओं को उन्होंने व्यापक संदर्भों तथा नवीन आयामों में, चित्रित करने का प्रयत्न किया है । प्रसाद के पौराणिक नाटकों की परम्परा को आगे विकसित करने का श्रेय उदय शंकर भट्ट को है । प्रसाद ने जहां पौराणिक यथार्थता का विशेष ध्यान रखा है । भट्ट जी ने वहीं आधुनिक यथार्थ की पौराणिकता बोध के साथ सन्निहित करने का प्रयत्न किया है । उपेन्द्रनाथ "अश्क " कृत " जय-पराजय", छटा बेटा आदि नाटक व्यंग्य-प्रधान हैं । इसी दृष्टि से जगदीश चन्द्र माथुर का भी विशेष उल्लेख उत्थान है । उन्होंने आधुनिकता के परिवेश को अपने नाटकों में प्रमुख रूप से अंकित करने का सफल प्रयत्न किया है । कोणार्क " उनका प्रसिद्ध नाटक है । माथुर के नाटकों में सूक्ष्मता द्वंद्व एवं मानव-मनोविज्ञान का उद्घाटन हुआ है ।

विष्णु प्रभाकर, चन्द्रगुप्त विद्यालंकार, मोहन राकेश तथा नरेश मेहता उपर्युक्त परम्परा से जुड़े मौलिक परिवेश को यथार्थता पर अवतरित करने वाले विशिष्ट नाटककार है । विष्णु प्रभाकर ने सामाजिक समस्याओं को लेकर ही नाटक लिखे हैं । जिनमें आज का सामाजिक यथार्थ उद्घाटित हुआ है । नरेश मेहता कृत " सुबह के घंटे " तथा " खंडित यात्राएं" भी इसी क्रम में ख्याति प्राप्त नाटक हैं ।

" सुबह के घण्टे " में राजनीतिक समस्याओं को लिया गया है । " खण्डित यात्राएं " विच्छिन्न हो रहे सामंत वर्ग पर आधृत हैं उसमें नए-पुराने मूल्यों का संघर्ष अत्यन्त सूक्ष्मता और आधुनिक परिवेश के परिप्रेक्ष्य में चित्रित किया गया है । मोहन राकेश इस प्रकार उपर्युक्त नाट्य-विकास-यात्रा के क्रम में नए-पुराने सभी नाटक अभिनेयता एवं कथ्य-शिल्प की दृष्टि से सफल रहे हैं। कलात्मक सुरुचि कापरिचय इन नाटकों में मिलता है । सामाजिक यथार्थ एवं नए उभारने वाले मानव-मूल्य नाट्य-कला के नवीनतम ढांचे में स्वाभाविकता के साथ प्रस्तुत किए गए हैं । पुरानी एवं नई पीढ़ियों के मूल्यों के संघर्षों का प्रस्तुत नाटक प्रतिनिधित्व करते हैं । उनका आधार चाहे ऐतिहासिक रहा हो या सामाजिक यथार्थ-परक परन्तु आज के पर्यावरण को लेकर उन्होंने बौद्धिकता का आग्रह तथा सूक्ष्मता का प्राधान्य अपने भीतर संजोया है ।

आज के सामाजिक यथार्थ का उद्घाटन नए परिवेश के साथ करने का पूर्ण श्रेय मोहन राकेश के नाटकों को है । " आषाढ़ का एक दिन ", " लहरों के राजहंस ", " आधे-अधूरे ", " पैर तले की जमीन " ऐसे ही नाटक हैं जिनमें आधुनिक समय, नए-मूल्य और अभिनव-प्रवेश की महत्ता प्रतिपादित की गई है । यह नाटक हिन्दी नाट्य-साहित्य की नवीनतम प्रगति की ओर संकेत करते हैं । नए-पुराने मूल्यों का संघर्ष ही नहीं बल्कि आधुनिक परिवेश की विजय इन नाटकों का मूल-अभिप्रेत रहा है । सामाजिक यथार्थ एवं नए उभरने वाले नाटक नाट्यकला के नवीन सांचे

में इस प्रकार प्रस्तुत किए गए हैं जो अपने आप में विशिष्ट उपलब्धि पूर्ण उपादेय बन जाते हैं । हिन्दी नाट्य-परम्परा का यह सर्वथा नया प्रयोग है । जहाँ नाटक पाठनीय अधिक और अभिनेय क्रम की दृष्टि से निरूपित थे वहाँ आज रंग-मचीय नए-विधान के साथ अभिनेय अधिक, पठनीय कम हो गए हैं । नाट्य-विकास यात्रा के क्रम में मोहन राकेश के नाटकों का महत्त्वपूर्ण स्थान है । जिन्होंने मिथक और यथार्थ की दृष्टि से कथ्य और शिल्प को अभिनव-दिशा प्रदान की है । युगान्तर के परिचायक नाटक एक सुनिश्चित स्वरूप पाठक वर्ग के सामने प्रस्तुत करने में पूर्ण सक्षम हैं।

हिन्दी एकांकी नाटक का प्रचार 1930 के बाद ही स्वीकार किया जाता है । एकांकी ऐतिहासिक, मनोवैज्ञानिक, सामाजिक समस्या-मूलक आदि अनेक प्रकार के युग परिवेश की झलक को अपने कथ्य द्वारा अभि-व्यंजित करते हैं । हिन्दी में एकांकी का सूत्रपात करने का श्रेय भुवनेश्वर को है । जिन्होंने सन् 1935 में " कारवां " संग्रह में छः एकांकी लिखे । उदयशंकर भट्ट के एकांकी नाटकों में कथ्य एवं शिल्प गत कलात्मकता सबसे पहले दीख पड़ती है । सामाजिक विकृतियों का व्यंग्यात्मक रूप उनकी पैनी दृष्टि के कारण सहज रूप से उनके एकांकियों में सन्निवेशित है । जगदीशचंद्र माथुर के एकांकी की नाटक भी इसी दृष्टि से देखे जा सकते हैं । " ध्रुव का तारा " , "कलिंग विजय ", रीढ़ की हड्डी ", " मकड़ी का जाला", घोंसले " आदि उनके प्रमुख एकांकी नाटक है । माथुर साहब पश्चिमी तकनीक से अधिक प्रभावित है । उन्होंने निम्न एवं मध्यम-वर्ग की विभिन्न समस्याओं को यथार्थ-परक ढंग से अत्यन्त व्यापक रूप से चित्रित किया है ।

सेठ गोविन्ददास के " पतन की पराकाष्ठा ", " भय का भूत", " मैली "
" धोखेबाज" आदि प्रमुख एकांकी नाटक हैं । उनका मूल-स्वर राष्ट्रीय
राजनीतिक एवं सामाजिक है। विचार, चिंतन एवं वस्तु की मौलिकता
प्रदर्शित करते हुए वे एकांकी की श्रेष्ठकला प्रस्तुत करते हैं कथोपकथनों के
चुटीलेपन कथानक की आकर्षक बुनावट एवे कौतुहल के कारण अधिक प्रभावशाली
बन जाते हैं । उपेन्द्रनाथ " अश्क " के " चरवाहे ", " देवता की छाया
में ", आंधी चली " , आदि एकांकी नाटक हैं । निम्न मध्य-वर्ग की
विभिन्न समस्याओं का यथार्थता के साथ उद्घाटित करने का उनमें प्रयत्न
परिलक्षित होता है । गिरिजाकुमार माथुर ने इसी क्रम में ऐतिहासिक,
सामाजिक एवं प्रतीकात्मक एकांकी नाटकों की रचना की है । माथुर साहब
के पास पैनी दृष्टि एवं व्यंग्यपूर्ण शैली है जिसके माध्यम से वे अपने उद्देश्य
को सफल ढंग से प्रस्तुत कर सकने में सफल हो सकते हैं । नाटकों की भांति
एकांकियों में भी हरिकृष्ण प्रेमी राष्ट्रीय, सामाजिक, एवं राजनीतिक भावों
के पोषक हैं । नैतिक मानदण्डों आदर्शवाद परम्परा-गत मूल्य तथा सांस्कृतिक
मर्यादा उनके एकांकी नाटकों की प्रमुख विशेषता है ।

डा0रामकुमार वर्मा ने सांस्कृतिक मूल्यों मे ही बौद्धिकता के
आग्रह को अपने एकांकी नाटकों में अंगीकृत किया है । " प्रतिशोध ",
"दीपदान ", आदि एकांकी नाटकों में सामाजिक समस्याओं को यथार्थ परक
ढंग से नवीन जीवन दृष्टि के साथ अभिव्यंजित किया गया है । भगवती चरण
वर्मा ने अपने एकांकियों में यह चित्रित करने का प्रयत्न किया है कि मनुष्य
परिस्थितियों का दास है और वह यही सब करता है जो परिस्थितियां उससे
कराती है " सबसे बड़ा आदमी ", "दो कलाकार", "बुझता दीपक उनके -
प्रमुख एकांकी है ।

अमृतराय के " राह चलते ", " चारुमित्र " आदि एकांकी नाटक हैं जिनमें प्रगतिवादी विचारधारा का प्रकाशन हुआ है । चंद्रगुप्त विद्यालंकार, चतुरसेन शास्त्री, विनोद रस्तोगी आदि दूसरे एकांकीकार हैं, जिन्होंने यथार्थ समस्याओं को लेकर एकांकियों की रचना की है । नरेश मेहता के " मोक्ष गोपा ", " राय साहब की पार्टी, " सरोवर के फूल " आदि प्रसिद्ध एकांकी हैं, जिनमें नवीनतम शिल्प संबंधी प्रयोग परिलक्षित होते हैं विष्णु प्रभाकर के " इंसान क्या वह दोषी था ", नामक एकांकी संग्रह प्रकाशित हुए नए सामाजिक यथार्थ का उद्घाटन एवं उचित संगति में मनःस्थितियों को स्पष्ट करने की प्रवृत्ति इन एकांकियों में विशेष रूप से दृष्टव्य है । सूक्ष्मतर और गहन अंर्तदृष्टि के कारण विष्णु प्रभाकर ने जीवन के सूक्ष्मातिसूक्ष्म प्रवृत्तियों का अपने एकांकियों में प्रस्तुतिकरण दिया है ।

मोहन राकेश ने " अण्डे के छिलके " अन्य एकांकी तथा बीज नाटक की रचनाकार सर्वथानवीन जीवन-दृष्टि अपनाई भाषा सौंदर्य एवं सार्थक कथोपकथनों, नाटकीयता एवं कुतुहल चरमोत्कर्ष के कारण इनके एकांकी बहुत प्रसिद्ध रहे हैं । आज की व्यक्तिगत सामाजिक समस्याओं को यथार्थ-परक ढंग से व्यापक सामाजिक संबंधों में उद्घाटित करने का उन्होंने सफल प्रयत्न किया है । वैयक्तिक चेतना के आधार पर जीवन की असंगतियों के प्रति उनमें आक्रोश व्यक्त हैं । संवाद-योजना की असंयत अभिव्यक्ति उन्होंने निर्वैयक्तिक होकर की है । मानव जीवन के विषम-पक्षों को उन्होंने बीज-नाटकों में उभारा है । सामाजिक विकृतियां तथा जटिल समस्याएं जो आज मुंह फाड़कर खड़ी हैं ।

उन्होंने मध्यवर्ग की ऐसी जटिलताओं को गंभीर मूल्यों के साथ प्रस्तुत किया है । राकेश के साथ पैनी दृष्टि तथा व्यंग्य पूर्ण-शैली है । नवीन मूल्यों के नए परिप्रेक्ष्य में जितनी सफलता राकेश को मिली है उतनी अन्य एकांकीकारों को नहीं । सामाजिक एवं राजनैतिक व साहित्यिक बदलते प्रतिमानों में उन्होंने अपनी नाट्य रचनाओं को विशेषत्व प्रदान किया ।

ध्वनि-नाटक, श्रव्य नाटक बनकर आज के पर्यावरण के उद्घाटित करने में अन्यतम हैं । रेडियों-नाटकों में कथानकों का सीधी-सादा एवं सहज होना आवश्यक है । विष्णु प्रभाकर, गिरिजा कुमार माथुर, नरेश मेहता, उपेन्द्रनाथ " अश्क", विनोद रस्तोगी, तथा मोहन राकेश आदि के रेडियो-एकांकी कथ्य और शिल्प की दृष्टि से विशेष सफल रहे हैं । राकेश ने नाट्य-शिल्प की दृष्टि से अपने समग्र नाट्य-साहित्य में एक मौलिक दृष्टिकोण प्रदान किया । हिन्दी नाटक के जिस दौर में भारतीय नाटककार पाश्चात्य नाटककारों का अनुकरण कर रहे थे उन्होंने भिन्न कथ्य-शिल्प से नाटकों को सजाया-संवारा उन्होंने सम-सामयिक परिवेश में प्रचलित सामाजिक परम्परा का निर्वाह भी किया और शिल्पगत नए प्रयोग हिन्दी नाटक और रंगमंच को स्वतंत्र एवं सही दिशा की ओर अग्रसर करने और रंगक्षेत्र में नए सिरे से विचार करने का वातावरण व्यक्त करने की दृष्टि से मोहन राकेश के छठे दशक के नाटक अप्रतिनिधि माने जाएंगे। अपनी मौलिक दृष्टि पर उन्होंने हिन्दी नाटक को कथ्य और शिल्प के स्तर पर परम्परागत दृष्टि से मुक्त कर विकास के नए आयामों को जोड़ा ।

हिन्दी-साहित्य में आधुनिक उपन्यास साहित्य के जन्म का श्रेय उन पाश्चात्य प्रभावों को दिया जा सकता है, जो उन्नीसवीं शताब्दी में भारत में अंग्रेजी राज्य की स्थापना के फलस्वरूप दृष्टिगोचर होने लगे थे। उस समय नवीन शिक्षा और प्रेस, रेल, तार, तथा अन्य वैज्ञानिक आविष्कारों के फलस्वरूप भारतीय जीवन का चतुर्मुखी परिसंस्कार होने लगा था। यह चेतना धार्मिता, सामाजिक पारिवारिक वैयक्तिक, आर्थिक, मनोवैज्ञानिक आदि में विविधता से संपन्न थी। मध्य-वर्गीय समाज की पीठिका पर उपन्यास-साहित्य का ढांचा निर्मित किया गया। लाला श्रीनिवास दास कृत " परीक्षागुरु (1882) को आधुनिक शैली का प्रथम उपन्यास माना जा सकता है। शैल्पिक दुर्बलताओं के बावजूद इस उपन्यास का विकास क्रम में विशेष महत्व है।

उपन्यास-साहित्य का पूर्ण विकास आगे चलकर प्रेमचंद और उनके समकालीन दूसरे उपन्यासकारों की कृतियों में लक्षित होता है। प्रेमचंद ने हिन्दी-उपन्यासों को शैशवावस्था से निकालकर प्रौढ़ावस्था की ओर उन्मुख किया और प्रत्येक दृष्टि से हिन्दी-उपन्यास साहित्य को नए आयाम प्रदान किए। जीवन की संकुलता को लेकर युगीन समस्याओं के विविध-पक्षों को स्पष्ट करने का प्रयास सर्वप्रथम प्रेमचंद के उपन्यासों में ही मिलता है। उन्होंने हिन्दी उपन्यासों को कल्पना से यथार्थ की ओर मोड़कर जीवन के अधिक निकट लाने का स्तुत्य प्रयास किया है। रोमांस और केवल मनोरंजन को छोड़कर सामान्य जीवन को अपने उपन्यासों में यथार्थ अभिव्यक्ति दी। जिसके परिणाम स्वरूप हिन्दी उपन्यास साहित्य में एक संक्रांति की अवस्था लक्षित होती है।

मुंशी प्रेमचंद का एक भी उपन्यास ऐसा नहीं है, जिसमें जीवन का यथार्थ अपने संतुलित रूप में उपस्थित न हुआ हो । कुछ में जैसे वरदान "काला-कल्प ", "सेवा-सदन", और "गबन" के अंक आदेर्शवादी हैं , वे भी इसलिए क्योंकि तब उनका विश्वास था कि साहित्य का काम हमारी सुरुचियों को जागृत करना है । " प्रेमाश्रम" , "कर्म-भूमि, व रंगभूमि के अंत गांधीवादी ढंग से हुए हैं । निर्मला और गोदान में समसामयिक-चित्रण कर यथार्थ का अद्भुत संतुलन बनाए रखा है । इस युग में प्रेमचंद के साथ ही वृंदावनलाल वर्मा , राजा राधिका प्रसाद सिंह, प्रताप नारायण श्रीवास्तव, पाण्डेय बेचन शर्मा, " उग्र", चतुरसेन शास्त्री, भगवती प्रसाद वाजपेयी आदि उपन्यासकारों ने हिन्दी उपन्यास की प्रगति-विचार धारा में अपना अक्षुण्ण योगदान दिया है । पिछले युग की भांति ही इस काल में भी उपन्यासकारों के उपन्यास वर्णनात्मक-शैली में लिखे गए हैं । इस काल के उपन्यासों में मनोवैज्ञानिकता कलात्मकता और स्वाभाविकता के साथ यथार्थता के प्रति लेखकों का निश्चित आग्रह लक्षित होता है और अपरिपक्वता के साथ अभिव्यंजना की सशक्तता लक्षित होती है ।

प्रेमचंद ने जिस सशक्त परंपरा का सूत्रपात किया था वह आगे यशपाल, भगवती चरण वर्मा, रांगेय राघव आदि द्वारा जीवित रही । यशपाल कृत " दादा कामरेड", "मनुष्य के रूप", "झूठा-सच", "बारह घंटे", अमृतलाल नागर कृत "महाकाल", तथा बूंद और समुद्र", भगवती चरण वर्मा कृत "टेढ़े-मेढ़े रास्ते", "भूले-बिसरे चित्र, आदि तथा रांगेय राघव कृत "घरोंदे सीधा-रास्ता आदि उपन्यास परिवर्तित परिस्थितियों को युगीन भावबोध

के साथ जोड़ते रहे हैं । प्रेमचंद जैसी सीधी रचना जीवन्तता तथा सामाजिक व्यवहार के निर्वाह के प्रति आग्रह और प्रगतिशील दृष्टिकोण के साथ यथार्थता का स्वाभाविक चित्रण इन लेखकों की प्रमुख विशेषता है । भगवती बाबू ने "चित्रलेखा " में पाप-पुण्य की समस्या के दृष्टिकोण की विषमता से सुलझाया है । उनका यह दृष्टिकोण आगे भी उनके अन्य उपन्यासों में विविध रूप में परिलक्षित होता है । उन्होंने उसे भी काम या अर्थमूलक आधार पर सुलझाने का प्रयत्न किया है । रांगेय राघव भी प्रगतिशील उपन्यासकार थे । पर उस रूप में नहीं जिस रूप में यशपाल । उनके "घरोंदे" तथा "हुजूर" उपन्यासो में आर्थिक वैषम्य तथा शोषण आदि विभिन्न सामाजिक वृत्तियों पर लेखक का तीव्र आक्रोश व्यक्त होता है । इस क्षेत्र में दूसरे उपन्यासकारों में ऊषा देवी मिश्रा, राहुल सांस्कृतायन, निराला आदि है । जिन्होंने उल्लेखनीय उपन्यास लिखे हैं ।

इसी परम्परा के साथ आद्रता-परक धारा का भी सूत्रपात दृष्टिगोचर होता है, जिसमें प्रमुख रूप से जैनेन्द्र कुमार, अज्ञेय, इलाचंद्र जोशी, आदि उपन्यासकार आते हैं । शिल्प की दृष्टि से इन लेखकों ने वास्तव में अति-प्रशंसनीय कार्य किया है । और एक अप्रचलित शिखा को हिन्दी में लाकर उसे विविधता प्रदान की । इन उपन्यासों में स्थूलतन से ही शिथिलता की ओर प्रचलित होने की प्रवृत्ति समाप्त होती है जैनेन्द्र ने त्याग-पत्र उपन्यास में सामाजिक यथार्थ चित्रित किया है और आत्मपरक डायरी-शैली को भी उन्होंने प्रयोग-धार्मिता के अनुसार ही अपनाया है । अज्ञेय प्रतिभाशाली उपन्यासकार है ।

"शेखर एक जीवनी ", अपने अपने अजनबी " " नदी के द्वीप" आदि उपन्यासों में शिल्प के विविध रूप हैं । इलाचंद्र जोशी " जहाज का पंछी" उपन्यासों में चित्रित यथार्थ जीवन का ही नहीं किसी बुद्धिवादी के स्तर पर बड़ी सतर्कता से हर पहलू को ध्यान में रखते हुए निर्मित यथार्थ है । मनो-विश्लेषणात्मक पद्धति में उन्होंने उपन्यास के पात्रों को सजीवता प्रदान की है । जीवन की कठोर विषमताओं, भूख-प्यास शोषण, आर्थिक वैषम्य एवं युद्ध की आशंका से संत्रस्त मानसिकता की बहुविध-समस्याओं का समाधान सेक्स और अहम् द्वारा अन्वेषित इनकी सूक्ष्मता तथा प्रतिभा की समर्थता होने के अतिरिक्त अपना अपना जीवन-दर्शन है ।

आधुनिक भाव-बोध को समझकर आगे-आने वाले लेखकों में राजेन्द्र यादव, मन्नू भंडारी, नागार्जुन, नरेश मेहता तथा मोहन राकेश आदि लेखक प्रमुख हैं । राजेन्द्र यादव कृत " सारा-आकाश"-" उखड़े हुए लोग " "कुलटा" अनदेखे अनजाने पुल", मन्नू भंडारी कृत " एक इंच मुस्कान ", नागार्जुन कृत " रतिनाथ की चाची ", बैलचनमा", "वरुण के बेटे", हीरक जयन्ती" फणीश्वर नाथ रेणु कृत " मैला-आंचल" परती-परिकथा" तथा नरेश मेहता कृत" डूबते मस्तूल", "यह पथ बंधु था"वो एकांत" आदि उपन्यास युग-बोध और पारिवारिक परिस्थितियों की कथा के नए-भाव-बोध को अभिव्यक्ति देने में सक्षम हैं। राजेन्द्र यादव कृत" उखड़े हुए लोग " ने केवल स्वातंत्र्योत्तर काल में स्त्री-पुरुष के बनते-बिगड़ते संबंधों पर ही प्रकाश डाला है । वरन् स्वाधीनतोपरान्त देश में हुए सामाजिक तथा राजनीतिक परिवर्तनों पर भी

प्रकाश डालता है । नागार्जुन मूलतः आंचलिक उपन्यासकार है । वर्ग-वैषम्य , अमानवीय शोषण, सामाजिक असामान्यता के प्रति तीव्र आक्रोष उनके उपन्यासों में ध्वनित है । उन्होंने निम्न-मध्य वर्ग की उन समस्याओं कोबड़ी कुशलता से उभारा है जो अभी तक किन्ही कारणों से उपेक्षित रह गई थी और जिन्हें नैतिक मूल्यों और सामाजिक दृष्टि से हेय समझा जाता था फणीश्वरनाथ रेणु नागर्जुन की भांति सामाजिक उपन्यासकार है और प्रेमचंद की भांति ग्रामीण परिवेश की परिधि में प्रस्तुत कर ग्रामों में भी परिवर्तनशीलता का स्पष्ट आभास देते हैं, जिनमें, मार्मिकता के साथ यथार्थ एवं स्वाभाविकता है । विषय-वस्तु और शिल्प का निर्वाह, की दृष्टि से उनके आंचलिक उपन्यास उपयुक्त हैं। नरेश मेहता ने उपन्यासकार के रूप में प्रकृति का मनोरम एवं संतुलित चित्रण किया है । और पात्रों की मनःस्थितियों तथा घटनाओं से कथा को तीव्रता प्रदान करने के लिए उन्हीं समस्याओं के साथ प्रस्तुत किया है । उनका उपन्यास-साहित्य शिल्प की दृष्टि से चाहेएक प्रयोग रहा हो किन्तु कथानक की यथार्थता - परिवेश में विकसित हुई है । जीवन के उन पक्षों को उन्होंने समेटा है जिनमें यथार्थवादी सामाजिकता है ।

सन् 1960 ई0 के पश्चात हिन्दी उपन्यासों के क्षेत्र में कमलेश्वर मोहन राकेश, सुरेश सिन्हा, निर्मल वर्मा, तथा शिवानी के नाम उलेखनीय है। इन सभी लेखकों ने परिगणना की दृष्टि से भले ही कम उपन्यांस लिखे हों लेकिन समकालीन जीवन-चिंतन को यथार्थवादी अभिव्यक्ति देने की क्षमता कृति में झलकती है । इन लेखकों मेंबड़ी संभावनाओं और निष्ठा, आस्था तथा

सोद्देश्यता के कारण उपन्यास परम्परा को निर्वैयक्तिक बनाए हुए है । इन उपन्यासों के लेखकों का मूल-स्वर आशावादी हैं । जिसे आत्मसात करने के प्रति आज की समूची पीढ़ी व्यग्र है । वातावरण को प्रस्तुत करने में कमलेश्वर को बड़ी सफलता मिली है । किसी भी स्थिति के सूक्ष्मातिसूक्ष्म ब्यौरों को और उनमें यथार्थ का रंग भर कर जीवन की समग्रता व्यक्त करने की उन उपन्यासकारों में क्षमता है । सुरेश सिन्हा कृत " वापसी" और "एक और अजनबी" उपन्यास आधुनिक परिस्थितियों के संबंध में एक चुनौती है । डायरी शैली में लिखे गए इस उपन्यास में शिल्प की सफलता तो है ही साथ ही नए सामाजिक यथार्थ का उद्घाटन करने के आधुनिक भावबोध को यथार्थ अभिव्यक्ति देने और परिवर्तित परिस्थितियों को उभारने में उन्हें बड़ी सफलता प्राप्त हुई है । निर्मल वर्मा कृत " वे दिन " " चौदह चेहरे " उपन्यासों में पारिवारिक जीवन के संदर्भों में सामाजिक परिवर्तनों का सफल विश्लेषण मिलता है । ऊषा प्रियम्वदा कृत उपन्यास " पचपन खम्भे लाल दीवारें " में भी आधुनिक नारी के जीवन की जीवन परिस्थितियों का सफल चित्रण मिलता है इन उपन्यासकारों के बदलते-प्रतिमानों को देखकर हिन्दी उपन्यास साहित्य के उज्ज्वल भविष्य का स्पष्ट संकेत मिलता है ।

मोहन राकेश यथार्थवादी उपन्यासकार है । "अंधेरे बंद कमरे", "अन्तराल" , " न आने वाला कल" आदि उपन्यासों में मध्यवर्गीय लोगों के जीवन की अन्तरंग झाकियाँ प्रस्तुत की हैं । पात्रों के जीवन के रूप में दबे हुए लोभों को उजागर किया है, जो बहुत ही प्रभावशाली और मार्मिक है।

स्वतंत्रता-पश्चात हमारे सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक जीवन में हो रहे आधुनिक परिवर्तनों को मोहन राकेश ने अपनी कुशलता से बड़ी सूक्ष्मातिसूक्ष्म अभिव्यक्ति दी । कथा-पात्रों की अपूर्व जिजीविषा, संघर्षक्षमता, और परिवर्तन की आकुलता को यथार्थ-कथ्य और शिल्प पर उन्होंने उपन्यास साहित्य को गतिशीलता का दृष्टिकोण प्रदान किया । आधुनिक भावबोध, चमत्कार-प्रदर्शन से परिपूर्ण व्यक्तित्व की उन्होंने परिवेशानुसार कहानी गढ़कर अपनी सूझबूझ का परिचय दिया है ।

मानव-जीवन की विसंगतियों तथा आंतरिक प्रति-क्रियाओं का संतुलित चित्रण उनके उपन्यासों में मिलता है । राकेश ने नवीन भावनाओं को लेकर नए-नए शिल्प प्रयोग किए हैं । कथ्य और शिल्प यात्रा में राकेश का उपन्यास-साहित्य सफल श्रृंखला की एक कड़ी है । जिसकी नवोन्मेष भावनाएं नवीन-शिल्प-संयोजना से यथार्थ-भूमि पर भावी-संभावनाओं के साथ पल्लवित हैं ।

कहानी के संदर्भों में हिन्दी कहानी परम्परा का समूचा इतिहास उपन्यास साहित्य की भांति ही रूपायित है । हिन्दी कहानी का जन्म राष्ट्रीय और सामाजिक आन्दोलनों के प्रसंग में हुआ है और उस समय के कहानी लेखकों ने उस काल के सम्पूर्ण स्थूलत्वके साथ कहानी-कला का रचना-रूप प्रस्तुत किया है । प्रेमचंद, प्रसाद, सुदर्शन और कौशिक तथा चतुरसेन शास्त्री आदि कहानी लेखकों ने कहानी-परम्परा को आगे बढ़ाया है युग मानस की दृष्टि से कहानी के और भी भिन्न-भिन्न सोपान दृष्टिपथ में उतरते हैं।

हिन्दी कहानी के वर्तमान विकास पर " रानी केतकी की कहानी" का स्मरण हो आता है , जो अपने नाम से ही पुरानेपन की सूचना देती है । समय स्थान और वस्तु के साथ आंतरिक जीवन की प्रवृत्ति का उद्घाटन इस कहानी में नहीं होता कथा का प्राचीन इतिवृत्ति छोड़कर वर्तमान काल में भारतेन्दु युग में हिन्दी कहानी के कथ्य और शिल्प अवधारणाओं पर विकसित होने का पहला मौका मिला है । भारतेन्दु के पश्चात हिन्दी कहानियां विकासमान पथ पर आगे बढ़ी । परिणाम स्वरूप वर्तमान जीवन के सन्निवेश रूप को उन्होंने अवधारित कर लिया है । यद्यपि पाश्चात्य प्रभाव से अछूती न रह सकी । कहानी क्षेत्र में यह अनुकरण-वादिता तीन भूमियां लेकर प्रस्तुत हुई एक तो कहानी की शैली का अनुकरण दूसरी, कहानी में प्रस्तुत जीवन दृष्टि का सटीक वास्तविक जीवन-चर्या का अनुकरण और तीसरा प्रयोगधार्मिता का अनुकरण भारतेन्दु के पश्चात कुछ दिनों तक कहानी-कला पर बंगाली लेखकों का प्रभाव पड़ा लेकिन प्रेमचंद और प्रसाद की कहानियों के मौलिक रूप में प्रकट होते ही यह कुहासा हमारे कहानी-साहित्य-क्षितिज से दूर हो गया ।

प्रेमचंद हिन्दी के सर्वश्रेष्ठ कहानी-कार हैं । कहानी कहने की नैसर्गिक प्रतिभा उनमें भरपूर है । सामाजिक यथार्थ-भूमि को लेकर राष्ट्रीय और आर्थिक समस्याओं को भी उन्होंने कहानी-कला का कथ्य बनाया साथ ही आदर्शोन्मुख -प्रवाहधारा की पकड़ प्रेमचंद में बड़ी विलक्षण है । उनकी कथा-शैली भावरंजना प्रधान इसलिए उसमें मनोरंजन का अंश प्रधान रहता है उनकी

सामाजिक दृष्टि अतिशय, अपार और तथ्यपूर्ण है जिनका मानव-मूल्यों के साथ सामाजिक-मूल्यांकन के लिए विशेष महत्व है । कहानी परम्परा को इस कहानी-कार ने बंधी हुई श्रृंखला से निकालकर यथार्थ की भूमि पर लाकर खड़ा कर दिया ।

जयशंकर प्रसाद ने लम्बी ऐतिहासिक कहानियां लिखी है । उनकी कहानिया काव्यत्व के रूप में प्रस्तुत हो गई है । उनकी कहानियों में उद्देश्य या प्रयोजन का तत्व इतना स्पष्ट नहीं है और न उस सत्य से बंधी हुई घटना-श्रृंखला प्रतीत होती है । प्रसाद की शैली पर्याप्त अलंकृत है, जिससे कहानी-कला-विकास के ही छोर दृष्टिगत होते हैं । एक वह, जो साधारण विवेक, अनुभव की प्रौढ़ता तथा भाषा की सरलता से चित्रित हुआ है । दूसरा जो ऐतिहासिक धरातल पर संस्कृत शब्दावली के गहन संस्पर्श को लिए हुए हैं ।

प्रेमचंदोत्तर कथाकारों को अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से दो सोपानों में विभाजित किया जा सकता है । पहले सोपान केकथाकार हैं - चंद्रधर शर्मा गुलेरी, पाण्डेय बेचन शर्मा, " उग्र" उपेन्द्रनाथा"अश्क" जैनेन्द्र कुमार, अज्ञेय, इलाचंद्र जोशी आदि दूसरे सोपान के कथाकार है - राजेन्द्र यादव, कमलेश्वर, मन्नू भंडारी, निर्मल वर्मा, मोहन राकेश, कृष्णा-सोबती, धर्मवीर भारती, रामदरश मिश्र राजेन्द्र अवस्थी, शैलेन्द्र मटियानी आदि ।

पहले सोपान के कथाकारों ने अपनी कहानियों में राजनीति, समाज-नीति और व्यक्ति नीति का पर्दाफाश मनोवैज्ञानिक दृष्टि से किया है ।

जैनेन्द्र की कहानियों से हिन्दी में एक नया उत्थान आरंभ हुआ । एक ही दृश्य या केन्द्रीय-घटना से जुड़े हुए कथानक की योजना करके समय और स्थान की योजना-बद्धता का निर्वाह उनकी कहानियों में हुआ है । भगवती प्रसाद बाजपेयी, भगवती चरण वर्मा, उपेन्द्रनाथ "अश्क" आदि की कहानियां भी इसी सोपान में प्रभावपूर्ण तथा सुपाच्य हैं । इन कहानीकारों की कथा-यात्रा में मानवतावादी दृष्टिकोण का भाव-प्रसार स्थापित हुआ है । नए साहित्य-बोध के साथ नए-धरातल पर व्यक्ति-वादी चेतना का स्वर सुनाई पड़ता है । जैनेन्द्र कुमार, "अज्ञेय", इलाचंद्र जोशी, आदि कथाकारों में व्यक्तिवाद मनोवैज्ञानिक रूप में अधिक उभरा है । फ्रायड के चेतन और अवचेतन संबंधी खोज के सहारे मनुष्य मस्तिष्क के अनेक रहस्यों का उद्घाटन हुआ है । रूढ़ियों का बहिष्कार बंधनों से विद्रोह और एक स्वनिर्मित स्वछंद्र मार्ग का अनुसंधान भी नए साहित्य का नया बोध है । श्लील - अश्लील भी इसी स्वच्छंदतावादी मूल्यों के तहत विवेचन का अधिकारी है । भाव-बोध के इन नए धरातल की अभिव्यंजना पुराने शिल्प से संभव न जानकर, नए शिल्प के परिवर्तन का कार्य भी हुआ यही आधुनिक-कहानी का आधुनिक बोध है ।

मोहन राकेश के समकालीन कहानीकार परिवेश के जीवित यथार्थ को अभिव्यक्त करते हैं । उनका उद्देश्य पाठकों को अभिभूत करना करना मात्र नहीं अपितु पाठक के समक्ष यथार्थ प्रस्तुत करना है । यथार्थ की अनुभूति का क्षेत्र पहले की अपेक्षा विस्तृत हो गया है । लेखक साधारण सी लगने वाली घटना को समग्र-परिवेश के साथ उपस्थित करके सार्थक और महत्व-पूर्ण बना देता है । लेखक पहले की तरह उपदेशक अथवा व्याख्याकार नहीं है।

वह सामाजिक घटनाओं को हू-ब-हू चित्रित कर देना चाहता है । कमलेश्वर कृत " राजा निरबंसिया" राजेन्द्र यादव कृत " छोटे-छोटे ताजमहल " मोहन राकेश की " क्वार्टर " जैसी अन्य कहानियां, निर्मल वर्मा कृत - "परिन्दे", मन्नू भंडारी कृत " "यही सच है ", रमेश बक्षी कृत " एक अमूर्त तकलीफ" गिर्रिराज किशोर कृत "नया-चश्मा", "धर्मवीर भारती कृत " "बंद गली का आखिरी मकान", शिव प्रसाद सिंह कृत- "बरगद का पेड", गजानन माधव मुक्तिबोध कृत "काठ का सपना ", श्रीकान्त वर्मा कृत "झाड़ी" आदि ऐसी ही क्वानियां हैं, जिनमें परिवेश को लेकर मनुष्य की जिदंगी को मूल्यांकित किया गया है । नैतिक मूल्यों में हृासकी प्रवृत्ति, वैज्ञानिक तथा भौतिकवादी मूल्यों में विश्वास की प्रवृत्ति ने वर्तमान-जीवन मूल्यों को प्रभावित किया है । नया रचनाकार जिस खुले मन से लिख रहा है, यह खुले रूप से स्पष्ट्र है । अतः आज का लेखक वर्तमान के नए- बोध और प्रभाव से प्रेरित है कहानी कतिपय बाह्य-प्रभाव लेकर भी अंकुरित व प्रस्फुटित हो रही है । समूचा कथा-साहित्य आज के साहित्यिक बोध के नए-आयामों को अपने में समेटे हैं ।

6 राकेश में शिल्प और कथ्य को ग्राह्य करने की पैनी दृष्टि है । राकेश की कहानियों में इसी कारण जो बोध उभरा है, वह कई स्तरों पर नया है । यह व्यक्ति-व्यक्ति के संबंधों में आई टकराहट व शून्यता से उद्भूत हैं । साहित्य में व्यक्ति की मनोगत भाव-राशि की अभिव्यंजना नित नए बिन्दुओं पर उद्भावित हो रही है । यही कारण है कि मोहन राकेश के साहित्य में भोगे यथार्थ की तस्वीरें सर्वत्र दिखाई देती हैं ।

व्यक्ति स्वातंत्र्य और परिवर्तित मनःस्थिति के बिम्ब मोहन राकेश की यथार्थता के सबसे पुष्ट प्रमाण है । राकेश वर्तमान पीढ़ी में उन कृतिकारों में अन्यतम हैं, जिन्होंने हिन्दी कथा-रचना को आडम्बरहीन बनाकर अपनत्वता का रिश्ता दिया है । अपने लेखन से उन्होंने सर्वकालीन हिन्दी कहानी लेखन के साथ उच्चतर विकसित रूप-रेखा निर्धारित की है ।

मोहन राकेश ने कथ्य के चयन और उसके अभिव्यंजना में मनुष्य के जीवन का पूर्ण प्रश्रय प्राप्त किया है । वे जो भी लिखते हैं वह पूरी तरह उनकी आत्मिक अनुभूति में रंग कर ही साहित्य का रूप धारण करता है । यद्यपि राकेश निर्वैयक्तिक कथाकार हैं फिर भी उन्होंने कथ्य-दृष्टि को परिष्कृत तथा विश्वसनीय मानवता के घेरे में ही बनाया है । उन्होंने प्रासंगिकता और समकालीनता की चुनौती को कभी भी अनदेखा नहीं किया । वे मानते थे कि जिस प्रकार अनुभूति का अभिव्यंजित होना सहज प्रक्रिया है उसी प्रकार अभिव्यक्ति का परिवेशात्मक आधार भी अनिवार्य है । कथ्य चाहे ऐतिहासिक हो या पौराणिक, राकेश को पाकर आधुनिकता-बोध से सम्पृक्त हो ही गया है । उन्होंने अतीत के ही स्त्री-पुरुष के संबंधों को विकसित नई-पीड़ा, पीड़ा-बोध, अलगाव तथा विघटन से परिपूर्ण देखा और परखा है । समकालीन युग-जीवन की अभिव्यंजना का स्वर-संधान इनकी कहानियों से हुआ है । मनुष्य के - स्वाभाविक वृत्ति के रूप में राकेश ने कहानी-संदर्भ प्रदान किये हैं । अनुभूति की ईमानदारी और अभिव्यक्ति की निश्छल प्रसंगता उनकी सबसे बड़ी उपलब्धि है । कहानियों के कथ्य में समकालीन जीवन को समग्र पहचान, पकड़ और सूक्ष्म संवेदनात्मक अभिव्यक्ति छिपी हुई है । उनके कहानी-पात्र जिजीविषा, जिंदादिली और संघर्षरत होकर भी आत्माभिमान के सशक्त प्रतीक हैं ।

मोहन राकेश एक सजग-शिल्पी थे । शौल्पिक विचारणा का आधुनिक परिधान इन्होंने अपने समग्र-साहित्य में ओढ़ा है । उनका समकालीन समाज के प्रति रूझान रहा है । वे व्यक्ति, परिवार, समाज, राष्ट्र सभी इकाइयों को भेदकर विश्व के निखिल कहानी-सृष्टा हैं । जिन्होंने विचार और अभिव्यक्ति के स्तर पर भाषिक-संरचना को नए प्रयोग दिए । शैल्पिक प्रदीयता के लिए राकेश का नामोल्लेख-विशिष्ट है । कथ्य के अनुरूप ही शिल्पगत भाषा, लोकोक्तिपरक प्रयोग, वाक्य-विन्यास परक समाहारता के बेंधनी हैं । जनजीवन की व्यापकता और परिवेश जन्य वास्तविकता संवेदना को संश्लिष्ट उनके शिल्प-विधान में अवतरित हुई है । इन्होंने शिल्प-धरातल पर रचना चमत्कार के विधागत प्रयोग भिन्न-भिन्न रूपों में किए हैं । साथ ही सामयिक जनभावना के संघटन और सफूर्ति-प्रदायक शक्ति के बल पर भाषायी आदान-प्रदान को भी उन्होंने शोख बनाया है ।

आधुनिक हिन्दी-साहित्य का जन्म राष्ट्रीय और सामाजिक आन्दोलनों की क्रोड़ में हुआ । फलत: विभिन्न गद्यकार विभिन्न-शैलियों में अवतरित हुए किन्तु सबने प्रकारान्तर से पीड़ित मानवता के प्रति सहानुभूति प्रकट की । भारतेन्दु से लेकर मध्यावधि साहित्य में सूक्ष्म मनोवैज्ञानिकता तथा सामाजिक यथार्थवादिता का विशिष्ट प्रभाव है । आज का साहित्य-कार निम्न एवं मध्यवर्ग की प्रसंगगत उन्नत भावनाओं को अपना कथ्य बना रहा है जो पाठक वर्ग को चमत्कृत तो नहीं परन्तु स्थिति के अनुसार आश्वस्त करता है । परम्परा रूढ़न होकर प्रयोग-धर्मिता से युक्त होती हैं । अधुनातन साहित्यकारों ने परम्परा की उंगली पकड़कर सामाजिक तथा रूढ़िवादी - विषमता को देखा परखा और साहित्य-कथ्य सामाजिक एवं राष्ट्रीय अभि-व्यक्ति से पूर्ण हो उठा साथ ही राकेश जैसे प्रौढ़ साहित्कार ने उस कथ्य को

अधिक गहराई से नाप-तौलकर शिल्पगत नवीनता प्रदान की । आधुनिकता बोध के विविध-आयाम इस नाप-तौल में सहज ही परिभाषित हो गए हैं। परिणामत: व्यक्ति की विश्व-व्यापी मानसिक एवं बौद्धिक हलचल - साहित्य के कथ्य रूप में जाना जाने लगा । यह संकट पूर्व और पश्चिम का नहीं वरन् वैश्विक धरातल पर हर बार हर जीवित मनुष्य का है । त्वरित-गति से परवर्तित भौतिक परिपार्श्व नए जीवनादर्शों की खोज में उत्सवधर्मिता की उपेक्षा करते चलते हैं ।

साहित्य अपने में स्वतंत्र और संपूर्ण कला है वह जीवन के गंभीरतम-क्षणों को आकर्षक ढंग से प्रस्तुत करता है । अधुनातन साहित्य में जीवन की अद्भुत पकड़ हैं । उसके द्वारा जीवन के जटिलतम परत सरलता पूर्वक उघांड़े जाते हैं । रचना-विधान की दृष्टि से निस्संदेह आज का साहित्य परिसीमाओं का अतिक्रमण कर नवीनता के सूक्ष्म-बिन्दुओं को स्पर्श करता दिखाई पड़ता है । आज का साहित्यकार कला की उत्कृष्टता की ओर अधिक सचेत है वह जीवन सत्य को गहराई से देखने, जीवन के प्रति अपनी निष्ठा व्यक्त करने के प्रति भी सतत प्रयत्नशील है । मोहन-राकेश उपर्युक्त जीवन-दर्शन की विविधताओं में आज के परिवेश के एकत्व अखंड के साथ साहित्य में अभिवयक्त है । जिन्होंने परिवेश की सूक्ष्म से सूक्ष्मतर अवधारणा को कथ्य एवं शिल्प में निर्वैयक्तिक होकर अभिव्यंजना प्रदान की है ।

:: 0 ::

-:: परिशिष्ट -::

: उपजीव्य ग्रंथ :

1- एक और जिंदगी : राजपाल एण्ड संस, इलाहाबाद, 1975

2- वारिस : मोहन राकेश, राजकमल प्रकाशन, 8, नेताजी सुभाष मार्ग, नईदिल्ली ।

3- पहचान : मोहन राकेश, राजपाल एण्ड संस, कश्मीरी गेट, नईदिल्ली ।

4- क्वार्टर : मोहन राकेश, राजकमल प्रकाशन, नईदिल्ली ।

5- नए-बादल : मोहन राकेश, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, बी/45-47, कनॉट प्लेस, नईदिल्ली । (तृतीय संस्करण)

6- मिले-जुले चेहरे : मोहन राकेश, राधाकृष्ण प्रकाशन, अन्सारी रोड, दरियागंज, दिल्ली-6 (1969)

7- एक-एक दुनिया : मोहन राकेश, राधाकृष्ण प्रकाशन, अन्सारी रोड, दरियागंज, दिल्ली-6

8- इन्सान के खण्डहर : मोहन राकेश, प्रगति प्रकाशन, नवीन प्रेस, दिल्ली ।

9- आषाढ़ का एक दिन : मोहन राकेश, राधाकृष्ण प्रकाशन, 2 अंसारी रोड, दरियागंज, नईदिल्ली ।

10- लहरों के राजहंस : मोहन राकेश, राजकमल प्रकाशन, प्राइवेट लिमिटेड, 8 नेताजी सुभाष मार्ग, नई दिल्ली । (सातवां संस्करण)

11- आधे-अधूरे : मोहन राकेश, राधाकृष्ण प्रकाशन, 2 अंसारी रोड, दरियागंज दिल्ली-6 (पांचवी आवृत्ति)

12- पैर तले की जमीन : मोहन राकेश, राजपाल एण्ड संस, कश्मीरी गेट, दिल्ली । (द्वितीय संस्करण)

13- अण्डे के छिलके, अन्य एकांकी तथा बीजनाटक मोहन राकेश, राधाकृष्ण प्रकाशन, 2 अंसारी रोड, दरियागंज दिल्ली-6 (1973)

14- अँधेरे बंद कमरे : मोहन राकेश, राजकमल प्रकाशन, नईदिल्ली, पटना, चौथी आवृत्ति (1979)

15- रात बीतने तक तथा अन्य ध्वनि-नाटक : मोहन राकेश, राधाकृष्ण प्रकाशन

16- अन्तराल : मोहन राकेश, राजकमल प्रकाशन, प्रा०लि०, 8 नेताजी सुभाष मार्ग, नई दिल्ली । (द्वितीय संस्करण) 1973

17- न आने वाला कल : मोहन राकेश, राजपाल एण्ड संस, कश्मीरी गेट, दिल्ली । (तीसरा संस्करण -1974)

: उपष्टकारक ग्रंथ :

18- पुनर्नवा (उपन्यास) : आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी

19- स्कंद-गुप्त (नाटक) : जयशंकर प्रसाद, प्रसाद प्रकाशन, वाराणसी-1

20- आधुनिकताबोध : रामधारी सिंह दिनकर, हिन्दी बुक सेंटर, दिल्ली, 1963

21- आधुनिकता और समसामयिकता : राजकमल बौरा, औरंगाबाद, 1973

22- आधुनिकता और आधुनिकीकरण : रमेश कुन्तल मेघ, अक्षर प्रकाशन, दिल्ली 1969

23- आधुनिकता और हिन्दी साहित्य : अज्ञेय-राधाकृष्ण प्रकाशन, नईदिल्ली, 1973

24- आधुनिकता और हिन्दी साहित्य : इन्द्रनाथ मदान, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 1973

25- आधुनिकता : साहित्यिक संदर्भ में : गंगा प्रसाद विमल, मैकमिलन प्रकाशन, नईदिल्ली, 1968

26- आधुनिकता के पहलू : विपिन कुमार अग्रवाल, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 1973

27- आधुनिक युग के वातायन से : अशोक कुमार गुप्त

28- नए प्रतिमान पुराने निकष : लक्ष्मीकांत वर्मा, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, वाराणसी, 1966

29- समसामयिकता और आधुनिक हिन्दी साहित्य : रघुवंश, केन्द्रीय हिन्दी संस्थान, आगरा, 1972

30- एक दुनिया समानान्तर : (सम्पादित), राजेन्द्र यादव, अक्षर प्रकाशन दिल्ली, 1966

31- एक साहित्य की डायरी : मुक्तिबोध, भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली 1964

32- कहानी का रचना विधान : जगन्नाथ प्रसाद शर्मा, वारणसी, 1961

33- कहानी : नई कहानी : नामवर सिंह, लोक भारती प्रकाशन इलाहाबाद, 1964

34- कहानी और कहानी : (सम्पादित) इन्द्रनाथ मदान, नीलम प्रकाशन, इलाहाबाद, 1964

35- कहानी: स्वरूप और संवेदना : राजेन्द्र यादव, अक्षर प्रकाशन, 1968

36- कहानी- कला और हिन्दी: कहानियों का विकास : छविनाथ त्रिपाठी, देहरादून, 1963

37- कहानी: अनुभव और शिल्प : जैनेन्द्र (प्रस्तुतकर्ता-विजेन्द्र स्नातक) दिल्ली, 1967

38- गद्य की सत्ता : रामस्वरूप चतुर्वेदी, मैकमिलन प्रकाशन, दिल्ली, 1977

39- नई कहानी की भूमिका : कमलेश्वर, शब्दकार प्रकाशन, दिल्ली, 1966

40- नई कहानी: संदर्भ और प्रकृति : (सम्पादित) देवी शंकर अवस्थी, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 1966

41- नई कहानी की मूल संवेदना : सुरेश सिन्हा, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 1966

42- नई कहानो :प्रक्रिया और पाठ : सुरेश चौधरी, भारती पटना, 1963

43- नई समीक्षा: नए संदर्भ : नगेन्द्र, नेशनल पब्लिकेशिंग हाउस, नईदिल्ली, 1970

44- नई कहानी के विविध प्रयोग : पाण्डेय, शशि भूषण शीतांशु, लोक-भारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 1964

45- समकालीन कहानी: दिशा और दृष्टि : (सम्पादित)धनंजय वर्मा, अभिव्यक्ति प्रकाशन, इलाहाबाद, 1970

56- हिन्दी कहानियों में द्वंद्व : सुमन मेहरोत्रा, आर्य बुक डिपो, दिल्ली, 1975

47- हिन्दी कहानी : (सम्पादित), नंद दुलारे वाजपेयी, अभिनव प्रकाशन, दिल्ली, 1962

48- हिन्दी कहानियों का विवेचनात्मक अध्ययन : ब्रम्हदत्त शर्मा, नमिता प्रकाशन, आगरा, 1971

49- हिन्दी कहानी: (सिद्धांत और विवेचन) : गिरीश रस्तोगी, नमिता प्रकाशन आगरा, 1967

50- हिन्दी कहानी : (एक अंतरंग परिचय) : उपेन्द्रनाथ "अश्क", नीलाभ प्रकाशन, इलाहाबाद, 1967

51- साहित्य: विविध संदर्भ : लोढ़ार लूतर्स, राजपाल एण्ड संस दिल्ली, 1968

52- नई कविता और अस्तित्ववाद : रामविलास शर्मा, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 1979

53- आधुनिक हिन्दी उपन्यास साहित्य में प्रगति-चेतना : लाइट एंड लाइफ पब्लिशर्स, दिल्ली जम्मू रोहतक, 1979

54- हिन्दी उपन्यास में प्रतीकात्मक शिल्प : डा० सुशीला शर्मा, सिलेक्शन पब्लिकेशन्स, दिल्ली, 1982

55- हिन्दी उपन्यास और यथार्थवाद : डा० त्रिभुवन सिंह

56- हिन्दी उपन्यासों में मध्य वर्ग : डा० हमराज "निर्मम", विभु प्रकाशन, साहिबाबाद, दिल्ली, 1978

57- आधुनिक हिन्दी साहित्य की विचारधारा पर पाश्चात्य प्रभाव : डा० हरिकृष्ण पुरोहित, उपमा प्रकाशन, उदयपुर, 1970

58- 20वीं शताब्दी का हिन्दी साहित्य : नए संदर्भ : लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय, साहित्य भवन प्रा०लि०इलाहाबाद, 1966

59- मोहन राकेश : व्यक्तित्व और कृतित्व : डा० सुषमा अग्रवाल

60- हिन्दी कविता में युगांतर डा०सुधीन्द्र, आत्माराम एण्ड संस, दिल्ली-6, 1957

61- उपन्यासकार मोहन राकेश (अंतराल के विशेष संदर्भ में) : विमला कुमारी पंडिता, पंचशील प्रकाशन, जयपुर, 1978

62- नाटक के तत्व सिद्धांत और समीक्षाः : विष्णु कुमार त्रिपाठी, 1973

63- समकालीन नाट्य साहित्य और मोहन राकेश के नाटक : सुषमा अग्रवाल, अनुपम प्रकाशन, जयपुर, 1975

64- स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी नाटक : डा0रीता कुमार, विभु प्रकाशन, साहिबाबाद, 1980

65- आधुनिक साहित्यः के नए आयाम : सुषमा भटनागर, पांडुलिपि प्रकाशन, दिल्ली, 1977

66- नाटककार मोहन राकेश : (संपादित) डा0सुंदर लाल कथूरिया, कुमार प्रकाशन, नईदिल्ली, 1974

67- आधुनिक नाटक का मसीहा : डा0गोविन्द "चातक" इंद्रप्रस्थ प्रकाशन, कृष्ण नगर, दिल्ली संस्करण 1975

68- मोहन राकेश और उनके नाटक : गिरीश रस्तोगी, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 1976

69- मोहन राकेश की रंगसृष्टि : जगदीश शर्मा, राधाकृष्ण प्रकाशन, 1975

70- मोहन राकेश के नाटकों में मिथक और यथार्थ : अनुपमा शर्मा, नचिकेता प्रकाशन, नईदिल्ली, 1980

71- मोहन राकेश तथा बलवन्त गार्गी की नाट्यकला का तुलनात्मक अध्ययन : मेरठ विश्वविद्यालय की पी0एच0डी0 उपाधि के लिए प्रस्तुत, शोध-प्रबंध 1979ए डा0ओंकार प्रसाद शर्मा

72- आधुनिकता बोध और स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कहानी ‡1950-70‡ : मेरठ विश्व विद्यालय पी0एच0डी0 उपाधि के लिए प्रस्तुत शोध-प्रबंध, 1981, डा0सुरेश चन्द्र शर्मा

73- समीक्षा दर्शन : हिन्दी समीक्षा के विशेष संदर्भ में : मेरठ विश्वविद्यालय की डी0लिट, की उपाधि के लिए प्रस्तुत शोध-प्रबंध, डा0नारायण दास समाधिया, जून-1982

पत्र-पत्रिकाएं :

1- नटरंग: 1972

2- नटरंग: अंक 21

3- नटरंग: अंक 22

4- परिवेश

5- माध्यम

6- सारिका, मार्च 1973 (मोहन राकेश स्मृति अंक)

7- Illustreted Weekly of India Author Erwel Emenezes
June 16/ 1974

ENGLISH BOOKS-

1- Writings of young Bary - Carl Marks.
2- Literature in Arts/ Carl Marks and Engels.
3- Modernity in East and West- Dr.Pune Sloka Ray (Discussion)
4- Introduction of Modernism- Halt.
5- The Struggle of the Modern - Stiphen spender
6- Existentialism far and against - Neetshe